प्रहसन परम्परा
और
भगवदज्जुकीयम्

लेखक

डॉ० उमेशदत्त भट्ट

एम.ए., साहित्याचार्य,

विद्यावारिधि (पी-एच.डी.)

प्रकाशक : निशान्त पाण्डेय
97/3एफ/1, शिवकुटी,
इलाहाबाद–211004, उ0प्र0 (भारत)

Publisher : NISHANT PANDEY
97/3 F/1, SHIVKUTI
ALLAHABAD-211004
U.P., (INDIA) **Ph. (0532) 541804**

प्रथम संस्करण – 500 प्रतियाँ (2000 ई0)

मूल्यः भारत में रु 145.00
विदेश में $ 36

लिपिसंयोजक – विनोद कुमार द्विवेदी
दूरभाष– 467320

मुद्रक : एकेडमी प्रेस, दारागंज
प्रयाग, (इलाहाबाद) दूरभाष– 500970

अपनी बात

'प्रहसन परम्परा और भगवदज्जुकीयम्' लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त सुधीजनों के हाथों समर्पित करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है। कवि बोधायन के इस प्रहसन की उत्कृष्टता ने मुझे अत्यधिक भावविभोर किया था। जिसके परिणामस्वरूप इस कृति के प्रति उभरे मेरे भावों को साकार स्वरूप मिल सका। मेरे लिए यह सौभाग्य का विषय है कि भगवदज्जुकीयम् जैसे उत्कृष्ट प्रहसन, जिसका मंचन भारत में अनेकों स्थानों के अतिरिक्त डेनमार्क व कनाडा आदि देशों में भी अत्यंत सफलता पूर्वक किया जा चुका है; पर कुछ लिखने की ईश्वरीय प्रेरणा से मैं सम्पन्न हुआ।

'निज कवित्त केहि लागि न नीका' के अनुसार अपनी कृति है अतएव अपने को तो अच्छी लगना स्वाभाविक ही है; वस्तुत: यह वस्तु कैसी है, इसका निर्णय तो सुधी जनों के ही हाथों में है।

इसके प्रकाशन के इस पुनीत अवसर पर मैं अपने मातुल स्व0 प0 बटुकनाथ शर्मा, विद्याविनयसम्पन्न त्याग व तपस्या की मूर्ति पितृचरण स्व0 प0 भगवतीप्रसाद भट्ट, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद के प्राचार्य डॉ0 गयाचरण त्रिपाठी एवं रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्बूतवी के पूर्व प्राचार्य डॉ0 जगन्नाथ पाठक के चरणों में प्रथम अर्पित करता हूँ। इन विद्वानों ने अपनी अमूल्य प्रेरणा से मुझे मण्डित किया।

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद, के प्रवाचक डॉ0 गोपराजू रामा एवं हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद के वर्तमान अध्यक्ष प0 हरीमोहन मालवीय के उपकारों से भी मैं अनुगृहीत हूँ।

अन्त में जिनकी असीम अनुकम्पा और अन्तः प्रेरणा से यह दुरूह कार्य सुकर हो सका उन अपने गुरूवर्य डॉ0 किशोरनाथ झा के पावन करकमलों में यह तुच्छ भेंट समर्पित करता हूँ। उनके पादपद्मों का परम पवित्र आशीर्वाद मुझे प्राप्त होता रहे यही मेरी अभिलाषा है।

गृहस्थी के तमाम दायित्वों को स्वयं ओढ़कर इस सारस्वत साधना हेतु मेरी पत्नी ने मुझे पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराया। उनके इस सहयोग ने मुझे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। अतएव मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

इस कृति की भित्ति को सुदृढ़ करने में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उन लेखकों के प्रति मैं सर्वदा ऋणी ही रहूँगा। हार्दिक धन्यवाद के अतिरिक्त मेरे पास उस ऋण के परिशोध का कोई और साधन नहीं है।

कभी-कभी कोई न कोई लोकोक्ति प्रकरणवश स्वाभाविक रूप से स्मृतिपटल पर अनायास ही उभर आती है। इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व के क्षणों में भी ऐसा ही हुआ। हिन्दी की लोकोक्ति 'अपने मरने पर ही स्वर्ग मिलता है' अचानक जलतरंगों की भाँति मानसपटल पर लहरायी। कारण यह कि इसके प्रकाशनार्थ की गयी समस्त गणेश-परिक्रमायें निष्फल हो चुकी थीं। बहुतों का मुखापेक्षी होने के उपरान्त भी नैराश्य में डूबना उतराना ही आज मेरे इस स्वप्न को साकार रूप दे सका। अतएव- It is all for the best, क्यों कि यदि ऐसा न हुआ होता तो इसको प्रकाश में लाने का सुयोग उपलब्ध न हो पाता।

चि0 निशान्त पाण्डेय को भी मैं अपने आशीर्वाद से बारंबार मण्डित करना चाहता हूँ, जिन्होंने इसके प्रकाशन का भार अपने छोटे कंधों पर उठाया।

एकेडमी प्रेस दारागंज के प0 सुरेन्द्रमणि त्रिपाठी ने इसके समय से सुचारु मुद्रण का दायित्व निर्वाह कर अत्यंत उपकृत किया है। अतएव मैं उनको साधुवाद अर्पित करता हूँ।

97/3एफ/1, शिवकुटी
इलाहाबाद- 211004 (उ0प्र0)

विदुषामाश्रव:
डॉ0 उमेशदत्त भट्ट

दो शब्द

यह हर्ष का विषय है कि श्री उमेशदत्त भट्ट का 'प्रहसन-परम्परा और भगवदज्जुकीयम्' शोधपरक ग्रन्थ, हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृत के प्रहसन-साहित्य में 'भगवदज्जुकीयम्' को श्री उमेशदत्त भट्ट बोधायन-कृत मानने में कुछ सन्देह रहित से प्रतीत होते हैं तथापि इसके रचनाकार को किसी बोधायन नामक व्यक्ति के रूप में स्वीकार करने में सन्देह की स्थिति अब भी बनी ही हुई है और साथ ही इसके रचना-काल के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चय नहीं हो पाया है।

यद्यपि इस रचना के 'आमुख' में वार (या पार ?) ईहामृग, डिम, समवकार, व्यायोग, भाण, संल्लापक, वीथी, उत्सृष्टाङ्क, प्रहसन आदि दस प्रकार की जातियों के नाटक और प्रकरण से जनित माना गया है तथापि कोई असम्भव नहीं कि भाण, प्रहसन आदि या इस प्रकार के प्रयोग अपने अविकसित रूप में नाटक और प्रकरण विकसित रूपक-भेदों से पूर्व भी लोक में प्रचलित रहे होंगे, ऐसा प्रतीत होता है। भाण, प्रहसन आदि रूपक-भेदों के प्रयोग के लिए राज-दरबार या मन्दिरों के प्रेक्षा-गृह उपलब्ध नहीं होते होंगे, इसका सङ्केत भगवदज्जुकीयम् के 'आमुख' से प्रकट भी होता है। इस सम्बन्ध में संस्कृत नाट्य-साहित्य के विशेषज्ञ श्री राधावल्लभ त्रिपाठी का अनुमान सही लगता है कि भगवदज्जुकीयम् का प्रथम अभिनय ऐसी ही किसी घुमंतू मण्डली ने किया होगा, तभी तो इसका सूत्रधार राजसभा में नाटक दिखाने का निमन्त्रण पाने का सपना देखने की बात कहता है ('भारतीय नाट्य, स्वरूप और पराम्परा', पृ. १२७) श्री त्रिपाठी की यह बात भी सही है कि "परकाय प्रवेश के अभिप्राय का , पहली बार सर्वथा अछूती रंग-सृष्टि के द्वारा सामाजिक विसङ्गति और विद्रूप को उभारने के लिए बड़ी सूझ-बूझ के साथ, उपयोग किया है (पृ. १२१–२)।

श्री भट्ट ने आलोच्य कृति के साथ, बहुत कुछ न्याय किया है ऐसा कह सकता हूँ। यदि श्री भट्ट मूल 'भगवदज्जुकीयम्' का उसकी यथा सम्भव अब तक अप्रकाशित टीका के साथ पुनः सम्पादन करके प्रकाशन करें तो इस सुन्दर लघु रचना के पाठकों को और अधिक प्रसन्नता होगी। विश्वास है कि श्री भट्ट को इस दिशा में भी सफलता मिलेगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए प्रिय उमेशदत्त भट्ट को बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनकी शोध-प्रवृत्ति गतिशील बनी रहे।

४ नवम्बर, २०००
३/१४, एम.आई.जी.,
झूसी, इलाहाबाद– २११०१९

डॉ०जगन्नाथ पाठक

सम्मति

'प्रहसन परम्परा और भगवदज्जुकीयम्' नामक हिन्दी ग्रन्थ देखने का अवसर मिला। इसके लेखक प्रयाग निवासी डॉ० उमेशदत्त भट्ट ने इसमें अनेक प्रासङ्गिक विषयों का सङ्कलन कर प्रतिष्ठा अर्जित की है।

संस्कृत रूपकों में प्रहसन का स्वरूप, प्रहसन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रहसनकार बोधायन का देश एवं काल के निर्णय के साथ व्यक्ति परिचय, उस युग के समाज का चित्रण, उक्त प्रहसन का संस्करण तथा उसका हिन्दी रूपान्तर आदि इस ग्रन्थ के प्रथम भाग मे आलोचित हुए हैं।

भगवदज्जुकीयम् की कथावस्तु, नाट्यशास्त्रीयदृष्टि से उक्त प्रहसन का समीक्षण, कथावस्तु का आलोचन, पात्रों के चरित्र एव मनोविज्ञान का विशद विश्लेषण लेखक के वैदुष्य एवं आलोचन दृष्टि का परिचायक है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य के विद्यार्थी तथा विद्वान् अवश्य लाभान्वित होंगे— ऐसा मेरा विश्वास है। मैं डॉ० भट्ट के सर्वविध कल्याण की कामना करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि इनकी लेखनी से संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य का भण्डार परिपूर्ण होता रहेगा।

१. ८. ९२
वैद्यवाटी, हुगली
(कलकत्ता)

श्री अनन्तलाल ठाकुर
प्राक्तन प्राध्यापक,
एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।
तथा प्राक्तन निदेशक,
के.पी.जायसवाल शोधसंस्थान, पटना।

सम्मति

पण्डित श्री उमेशदत्त भट्ट महोदय की 'प्रहसन परम्पराऔर भगवदज्जुकीयम् शीर्षात्मक ग्रन्थ का सम्यक् अवलोकन करने का अवसर मिला। 1925 ई0 में इस प्रहसन का संपादन पी0 अनुजन् अचन महोदय द्वारा किया गया। इस प्रकाशित प्रहसन ने अनेकों विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पूर्ववर्ती विद्वानों के मतों का तर्क संगत खण्डन-मण्डन प्रस्तुत करते हुए बोधायन ही भगवदज्जुकीयम् प्रहसन के प्रणेता हैं; प0 उमेशदत्त भट्ट ने इस संबंध में अपने ध्रुववाद को संस्थापित किया। प्रहसन विधा का स्वरूप, उसका इतिहास, बोधायन कालिक सामाजिक जीवन इत्यादि कतिपय विषय इस कृति के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करने वाले हैं। भगवदज्जुकीयम् के कथास्रोत की सम्यक् गवेषणा, उसके पात्रों का चरित्र-चित्रण, संवाद की दृष्टि से भाषा-शैली का अवगाहन तथा हास्य रस की दृष्टि से इसका नाट्यशास्त्रीय विवेचन अतीव रोचक लगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ वस्तुतः यह प्रमाणित करता है कि प0 उमेशदत्त भट्ट संस्कृत साहित्य, नाट्यशास्त्र व प्रहसनों के विशिष्ट विद्वान् हैं। भगवदज्जुकीयम् विषयक यह ग्रन्थ इस विद्वान् के प्रगाढ़ शास्त्रीय पाण्डित्य को अवधारित करता है।

दिल्ली
28.12.89

डॉ0 रसिकबिहारी जोशी
आचार्य, संस्कृतविभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जिनके श्रीचरणों में बैठकर मुझे वात्सल्य लाभ के साथ ज्ञानगङ्गा में अवगाहन का सौभाग्य मिला उन परम श्रद्धास्पद गुरुवर्य डॉ0 किशोरनाथ झा महोदय (गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद) को सप्रणति समर्पित।

डॉ0 उमेशदत्त भट्ट

प्रहसन परम्परा और भगवदज्जुकीयम्

विषयसूची

भाग (1)

अध्याय–1

संस्कृत रूपकों में प्रहसन का स्वरूप

रूपक दृश्य काव्य के अन्तर्गत निर्णीत हैं। ये दशविध हैं- नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क व ईहामृग। इनके अपने अलग-अलग स्वरूप हैं। इनके इन स्वरूपों का विशद विवेचन नाट्यशास्त्र में यथास्थान निहित है। यहाँ पर प्रसंगवश हम प्रहसन रूपक की विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रहसन रूपक की एक उत्कृष्ट विधा है। इसकी वस्तु कल्पना की भावभूमि पर बहुत प्रभावशाली ढंग से आधारित होती है। यह समाज पर व्यंग्य का एक अनुपम माध्यम है। अगर चोट कर दिया तो फिर अचूक होती है। इस अध्याय में भगवदज्जुकीयम् के संबंध में उठायी गयी कतिपय समस्याओं की भी चर्चा व उनका निराकरण प्रस्तुत किया गया है।

(1) रूपक का स्वरूप एवं प्रकार :

रूपक, तीनों लोकों के नाना प्रकार के भावों एवं अवस्थाओं का अनुकीर्तन या अनुकरण[1] है। ये लोकवृत्त सुखदुःख मिश्रित हैं। रतिआदि सुख स्वभाव है– रतिहासोत्साहविस्मयानां सुखस्वभावत्वम्[2]। लोकवृत्तों का अनुकरण हाव-भावों से युक्त अङ्गाभिनय द्वारा किया जाता है[3]। रूपकों में संसार के सभी प्रकार के भावों का कुछ घट बढ कर समावेश रहता है, जो कि दर्शकों में तरह तरह के भावों का संचार उनकी चित्तवृत्तियों के अनुरूप करता है तथा रसों की उत्पत्ति कर आनन्दवर्धन करता है[4]। यह एक ऐसा रूप-विधान है

जो कि तरह तरह के मनुष्यों का मनोरजन उनकी अपनी अभिरुचि के अनुसार करता है। इसका क्षेत्र विचित्र एवं अद्वितीय है। कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला तथा कर्म ऐसा नहीं है, जो कि रूपकों में दर्शकों को दृश्य न हो[5]।

रूपक दृश्य तथा रसाश्रित होते हैं[6]। रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है[7]। इन भावों के विविध संयोग से तरह तरह के स्थायी भावों की उत्पत्ति होती है, जो कि मनुष्य में विलक्षण आनन्द प्रवाहित करते हैं। यही विशिष्ट आनन्द रस कहलाते हैं। रस के संबंध में दशरूपककार धनञ्जय एवं काव्य प्रकाशकार मम्मटाचार्य की भी यही स्वीकृति है[8]।

भरताचार्य ने रूपक के दस भेद किए हैं–

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।। 2 ।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।
एतेषां लक्षणमहं व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः।। 3 ।।

नाट्यशास्त्रम्, अध्याय–18

रूपक के इन्हीं दस भेदों का समर्थन परवर्ती आचार्यों द्वारा भी किया गया है। हाँ! प्रहसनकार 'बोधायन' ने भगवदज्जुकीयम् में **नाटक प्रकरणोद्भवासु वारेहामृग-डिमसमवकारव्यायोगभा - लापवीथ्युत्सृष्टिकाङ्क प्रहसनादिषु दश जातिषु**[9] लिख कर कतिपय विद्वानों को तरह-तरह की अटकलों के लगाने में भ्रमित अवश्य कर दिया है।

अतएव इसी सातत्य में उक्त उद्धरण में आए वार तथा संलाप की चर्चा करना एवं तत्सम्बन्धी भ्रामक मान्यताओं का निराकरण किया जाना अप्रसांगिक न होगा।

एम. विंटरनिट्ज महोदय रूपक की दश विधाओं में, **वार** तथा **संलाप** को बोधायन के अनुसार **नाटक** तथा **प्रकरण** से प्रादुर्भूत बताकर स्वयं समस्याओं के आवर्त में घिर गए। विंटरनिट्ज

महोदय ने **सलाप** को [illegible] से जोड़ने की कल्पना तो कर लिया परन्तु **वार** के विषय में कोई भी समाधान नहीं कर सके[10]। वह सकारण यह भी स्पष्ट नहीं कर सके कि **वार** तथा **संलाप** को रूपकों में गिना जाय अथवा उपरूपको में[11]।

श्री अशोक नाथ भट्टाचार्य ने इन समस्याओं को उठाया अवश्य परन्तु उन्होंने भी येन केन प्रकारेण रूपक के बारह भेदों की कल्पना 'भगवदज्जुकीयम्' के पूर्वोक्त उद्धरण के आधार पर स्वीकार[12] कर लिया जो कि पूर्णतः आधार विहीन हैं क्यों कि–

(i) **संलाप** तथा **वार** को किसी भी नाट्यलक्षणग्रन्थ में रूपक के रूप में स्वीकार ही नहीं किया गया है। **वार** का तो रूपक अथवा उपरूपक के रूप में कहीं नाम तक नहीं लिया गया है।

(ii) **भगवदज्जुकीयम्** का कवि जब रूपकों की चर्चा कर रहा है तो वह उसमें उपरूपकों को समाविष्ट करने की भूल नहीं कर सकता। क्यों कि **'नाटकप्रकरणोद्भवासु.....'** के अन्त में वह **'प्रहसनादिषु दश जातिषु'** के अतिरिक्त किसी अन्य रूपक का विधान ही स्वीकार नहीं कर रहा है।

(iii) **रचनाकार** के उक्त उद्धरण के अनुसार यदि नाटक तथा प्रकरण से शेष **'वारेहामृगडिमसमवकारादि'** को प्रादुर्भूत मान भी लिया जाय तब तो फिर रूपक प्रमुखतः दो ही हुए– **नाटक** तथा **प्रकरण**, इसके अतिरिक्त अन्य वर्णित विधायें उपरूपक हुयीं, लेकिन नाटक तथा प्रकरण के अतिरिक्त अन्य वर्णित विधाओं को किसी भी आचार्य ने उपरूपक के रूप में निरूपित ही नहीं किया है।

दशरूपककार धनञ्जय से लेकर विश्वनाथ कविराज तक सभी विद्वानों ने नाट्यशास्त्र में गिनायी गयी रूपक की दश विधाओं के अतिरिक्त किसी अन्य विधा की चर्चा ही नहीं किया। इन सभी विद्वानों ने नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि द्वारा गिनायी गयी रूपक की दश विधाओं का यथावत् अनुमोदन किया है। ऐसी स्थिति में

वार तथा सलाप को रूपक की अथवा उपरूपक की विधा के रूप में कैसे कर स्वीकार किया जा सकता है?

अतः वार तथा संलाप इस स्थान पर न तो रूपक हैं और न ही उपरूपक। ये दोनों ही शब्द अपने अपने शाब्दिक अर्थों के कारण यहाँ सन्निविष्ट किए गए से प्रतीत होते हैं।

वार शब्द वास्तव में अपने शाब्दिक अर्थ की प्रतीति के कारण नाटक व प्रकरण के पश्चात् रचनाकार द्वारा प्रयुक्त किया गया है न कि रूपक अथवा उपरूपक के अर्थ में; जिसका आशय द्वारा अथवा कपाट[13] से है। तात्पर्य यह कि **'ईहामृगडिमसमवकारा . ..'** रूपकों के उद्‌भव का द्वार नाटक तथा प्रकरण है। नाटक तथा प्रकरण नाट्‌यशास्त्रीय विधानों के अनुरूप सर्वाङ्गीण होते हैं[14] इसलिए कवि ने नाटक एवं प्रकरण को शेष आठ रूपकों से अलग रक्खा है तथा इन्हीं को अन्य रूपकों का उद्‌भव माना है। आचार्य भरत मुनि ने भी जहाँ रूपक के भेदों की चर्चा की है वहाँ दसो रूपकों को एक साथ गिनाया है, परन्तु जब शास्त्रीय दृष्टिकोणों से विवेचना की बारी आयी तो नाटक तथा प्रकरण को शेष आठ रूपकों से गुणों के आधार पर उनके द्वारा अलग कर दिया गया[15]।

इसी प्रकार भाण के पश्चात् प्रयुक्त संलाप शब्द की भी स्थिति है; जिसका अर्थ 'प्रलाप', 'आलाप' अथवा 'चिल्लाने' से है। इसका प्रयोग 'भाणस्य संलापः' के अर्थ में किया गया प्रतीत होता है, न कि भाणश्च संलापश्च के रूप में, रूपक अथवा उपरूपक के लिए। अभिधान ग्रंथ भी संलाप शब्द की यही व्याख्या प्रस्तुत करते हैं[16]।

डॉ० राम जी उपाध्याय के अनुसार भगवदज्जुकीयम् में प्रयुक्त 'वार' शब्द संभवतः अभिनव भारती में आया 'पार' शब्द है[17]। डॉ० उपाध्याय के इसी सन्देह को संभवतः मूर्तरूप देते हुए देवभाषा प्रकाशनम् प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'भगवदज्जुकम्' प्रहसन में 'वार' के स्थान पर 'पार' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

यह 'पार' शब्द भी वास्तव में अपने शाब्दिक अर्थ की प्रतीति के अधिक समीप है, जिसका आशय तीर[18], किनारा अथवा अभिभावक[19] से है। यह प्रतीति पार को रूपक अथवा उपरूपक के किञ्चित् समीप नहीं आने देती परन्तु नाटक तथा प्रकरण के वैशिष्ट्य को अन्य आठ रूपकों की अपेक्षा अवश्य सबलता प्रदान करती है जिस सबलता के कारण भरतमुनि ने नाटक तथा प्रकरण को सर्ववृत्तिनिष्पन्नं कह कर सम्बोधित किया है।

(2) हास, हासोत्पत्ति तथा हास के प्रकार :

नाट्यशास्त्र के आठ नाट्यरसों[20] में हास्य रस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हास्य शब्द की व्युत्पत्ति 'हस्' धातु में 'घञ्' एवं 'ण्यत्' प्रत्यय के योग से हुयी है। हास्य रस का स्थायीभाव हास है[21]। यह चित्त की एक सहज व स्थिर प्रवृत्ति है।

जीवन में हास्य का समाहार उसकी निस्सारता को नष्ट करता है। संभवतः इसी कारण एक दुःखी व्यक्ति के दुःख को दूर करने हेतु सामाजिकों द्वारा उसको हंसा कर रिझाने का प्रयास किया जाता है। ऐसे क्षणों में उस व्यक्ति को शृंङ्गारिक वस्तुयें उतना प्रभावित नहीं कर पाती जितना कि विकृत आचार-विचार, भाषा, व्यंग्यार्थ एवं वेषालंकार। ये सब क्रियायें हास के विभाव[22] हैं, जिनका आश्रय चतुर्विध अभिनय है[23]। इन अभिनयों में ओष्ठ दशन, नासिका व कपोलों का स्फुरण, दृष्टि संकोच एवं आवश्यकतानुसार व्यंग्य मुद्रा में दृष्टि का विमोचन व विस्फारण आदि प्रमुख हैं। इन्हें अनुभाव कहते हैं। निद्रा, तन्द्रा, स्वप्न, असूया प्रबोध तथा अवहित्था इसके व्यभिचारी भाव हैं। यही भाव, विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का योग हास का उत्पादन कर मनुष्य में एक विलक्षण आनन्द का स्रोत प्रवाहित करते हैं। जिसे हास्यरस कहा जाता है। रस का यह आनन्द काव्य से प्राप्त होता है[24] चाहे वह दृश्य हो अथवा श्रव्य। दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। आचार्य भरत के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन ही नहीं होता[25]। रस काव्य की

आत्मा है[26]। विश्वनाथ कविराज ने रसात्मक वाक्यों को ही काव्य निरूपित किया है[27]। इस प्रकार रस की व्यापकता को आचार्यों ने अपने अपने अनुकूल स्वीकार किया है।

स्वानुभूति के अनुसार यदि किसी कवि को कोई विशेष रस रुचा हो तो यह उस कवि की अपनी विशिष्ट परख व भाव प्रवणता है[28] अन्यथा आठ रसों में **शृंगार रस** को ही व्यापक व सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। **हास्य** के पुट के बिना **शृंगार** का अस्तित्व अधूरा सा प्रतीत होता है। क्योंकि हास्य का साहित्यिक आस्वादन व लौकिक अनुभव साक्षात् है। अतएव हास्य शृंगार का अनुप्राण है। उसका अलंकार है[29]।

आचार्य भरत ने वस्तुतः शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स रसों को ही प्रमुख माना है। हास्य, करुण, अद्भुत व भयानक रसों को क्रमशः उपरसों की श्रेणी में रक्खा है[30]। ये प्रमुख चारों रसों के क्रमशः अनुकार हैं।

काव्यार्थ के साथ तादात्म्य के फलस्वरूप एक प्रकार के अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति ही रस या साहित्यिक स्वाद है। इन साहित्यिक स्वादों का संबंध चित्त की चार विभिन्न अवस्थाओं[31] से है, जो निम्न प्रकारेण हैं–

चित्त की अवस्थायें	**इन अवस्थाओं का स्वाद**		
	(i)		(ii)
1. विकास	शृंगार	–	हास्य
2. विस्तार	वीर	–	अद्भुत
3. क्षोभ	वीभत्स	–	भयानक
4. विक्षेप	रौद्र	–	करुण

एक एक अवस्था के दो दो स्वाद हैं। प्रथम प्रमुख तथा दूसरा तज्जन्य। ये स्वाद ही आठ रसों के कारण हैं। इस प्रकार शृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, वीभत्स से भयानक तथा रौद्र से करुण रस की उत्पत्ति होती है।

पुनश्च नाट्यशास्त्र में कहा गया है- **शृंगारानुकृतिर्यस्तु स हास्य इति संज्ञितः**[32] अर्थात् हास्य की उत्पत्ति हास्यादि (विभावादि) के कारण होती है जो शृंगार की अनुकृति है वह हास्य कहलाती है। इस प्रकार शृंगार के साथ हास्य का समावेश स्वाभाविक है। दोनों का ही सम्बन्ध चित्त के विकास से है[33]।

हासोत्पत्ति के मूल कारण के संबंध में पौरस्त्य तथा पाश्चात्य विद्वानों में मतैक्य नहीं है[34]। भरताचार्य शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानते हैं[35]। शारदातनय रजोगुण की हीनता को हास्य का कारण मानते हैं[36]। पाश्चात्य साहित्यकारों की दृष्टि में मनुष्य की स्वाभाविक भावनायें लोभ मोहादि हास्य के उत्पादक हैं[37]। अंग्रेजी समालोचक मूर्खतापूर्ण क्रिया कलापों को ही विदूषक की प्रवृत्ति मानते हैं[38]। मतवैषम्य के उपरान्त भी प्रकारान्तर से विद्वानों के चिन्तन में गम्भीर साम्य है। उनके वैचारिक विश्लेषण से यह बात स्पष्ट लक्षित होती है कि हास्य का कारण विपर्यय, असंगति, स्वांग, वक्रोक्ति तथा अनौचित्य है। भरताचार्य ने नाट्यशास्त्र में अनौचित्य को हास्य का कारण निरूपित किया है[39]। पर चेष्टाओं का अनुकरण भी हास्योत्पादक है[40]। पाश्चात्य आलोचक अरस्तू (रेटारिक) लाङ्गनिस (On the sublime) होरेश (आर्ट पोएटिक) तथा पोप भी अनौचित्य को हास्य का कारण मानते हैं[41]।

'स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः' की उक्ति अन्य रसों के लिए यथार्थ है परन्तु हास्य के लिए असत्य। जो वस्तु एक स्थान पर अनौचित्य पूर्ण प्रतीत होती है, दूसरे स्थान पर वही परिस्थिति विशेष के कारण औचित्यपूर्ण कही जा सकती है। क्योंकि –

विपरीतालङ्कारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
विकृतैरंगविकारैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः।। 50।।
विकृताचारैर्वाक्यैरंगविकारैश्च विकृतवेषश्च।
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः।। 51 ।।

नाट्यशास्त्रम्, अध्याय-6

हास्योद्‌भावन का यही तो आधार है। अस्तु, किसी व्यक्ति की अनुचित वेष-भूषा व भाषा सामान्य रूप से अनुचित कही जा सकती है किन्तु यदि यह हास्योत्पादन हेतु अनुकृत है तो औचित्यपूर्ण है[42]।

इस प्रकार अन्य रसों की अनौचित्यपूर्ण परिस्थितियाँ ही हास्यौचित्य हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने संभवतः इसी आधार पर करुण तथा वीभत्स आदि रसों में भी हास्य की सृष्टि स्वीकार की है- **तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम्**[43] ।

औचित्य का विस्तार प्रकारान्तर से अनौचित्य की सीमा निर्धारण का बाधक है, कारण यह कि आवश्यकतानुसार औचित्य का विपरीत रूप भी तो प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार हास्योत्पादक कारण असीम हैं। ये सभी कारण अन्य क्षेत्रों में अनुचित हो सकते हैं परन्तु हास्य रस के दृष्टिकोण से उचित होते हैं। अवस्था के विपरीत वेष, वेष के विपरीत गति व क्रिया, पाठ्य के विप्रकृत अभिनय वर्ज्य व अनुचित हैं। वर्ज्य व अनुचित तो हैं किन्तु हास्योत्पादक भी। एवंविधि उत्पन्न हास्य को दो भागों में विभक्त किया गया है-- आत्मस्थ व परस्थ[44]। हास्योत्पादक विषयों को देखने मात्र से उत्पन्न हास्य **आत्मस्थ** है तथा जो दूसरों को हंसता देख कर सहज ही उत्पन्न हो जाता है उसे **परस्थ** कहते हैं।

हास्य का स्वरूप **उत्तम, मध्यम** तथा अधम पुरूषों में भिन्न भिन्न है। उत्तम प्रकृति के पुरुषों का **स्मित** तथा **हसित, मध्यम** में **विहसित** तथा **उपहसित** एवं अधम पुरूषों का **अपहसित** तथा **अतिहसित** कोटि का हास होता है[45]। हास की प्रकृति के अनुसार इन षड्‌विध हास्यों को प्रहसन में व्यापकता से प्रयुक्त किया जाता है[46]।

जगद्‌धर भट्‌ट ने भी इन्ही छः प्रकार के हास्यों को स्वीकार किया है-

स्मितं हसितं चैव विहसितं चापहसितम्‌ ।
भवेत्प्रहसितं चातिहसितं तु भवेत्‌ क्रमात्‌।।

षड्भावसंश्रिता हास्यमेव षड्विधमुच्यते ।।

उपर्युक्त सभी प्रकार के हास्यों का लक्षण विश्वनाथ कविराज ने निम्न प्रकारेण प्रस्तुत किया है–

ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेव षड्भेदः।।217।।

ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम्।
किंचिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः।।218।।

मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम्।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं भवत्यतिहसितम्।। 219 ।।

साहित्यदर्पणः –तृतीय परि.

(3) प्रहसन – उत्पत्ति, स्वरूप एवं प्रकार :

परचेष्टाओं का अनुकरण हास्योत्पादक[47] होता है। नाटकों में ऐसी चेष्टायें विदूषक द्वारा अनुकृत हो हास्य उत्पन्न करती हैं। विदूषक विशेष कोटि का पात्र होता है[48]। इसकी गति हास्योत्पादक व मनोविनोद की वृद्धि[49] करने वाली होती है।

नाटकों में वीर अथवा शृंगार कोई एक रस ही अङ्गी रस हो सकता है[50] तथा हास्य रस अङ्ग रूप में प्रासङ्गिक कथावस्तु में विद्यमान होता है। प्रहसन में हास्य रस अङ्गी रस होता है।

हास्य उत्पन्न करने वाले चेट, चेटी, वेश्या, विट, धूर्त, पाखण्डी आदि विशेष कोटि के पात्रों के क्रिया-कलाप एवं अभिनय की प्रधानता जब रूपक को हास्य प्रधान बना देती है, तब यह प्रहसन कहलाता है। इसमें हास्य के अतिरिक्त अन्य रसों का स्थान गौण होता है।

प्रहसन की कथावस्तु कविकल्पित (उत्पाद्य) होती है[51] तथा सन्धि (मुख व निर्वहण) सन्ध्यंग, लास्यांग, भारती तथा कौशिकी वृत्ति युक्त एवं अङ्को[52] का विधान भाणवत् होता है[53]। भाण तथा

अङ्क का रूप निर्देश एकाङ्की है[54]। अतः प्रहसन भी एकाङ्की होता है, चाहे वह शुद्ध हो अथवा संकीर्ण–

प्रहसनस्याङ्कनियमानभिधानात् शुद्धमेकाङ्कम् ।
संकीर्णत्त्वेनैकाङ्क वेश्यादिचरितं संख्याबलादिति केचित् ।।

अभिनवभारती टीका– सं0 मधुसूदन शास्त्री

शुद्ध प्रहसन का स्वरूप :

अविकृतभाषाचारं विशेषभावोपपन्नचरितपदम् ।
नियतगतिवस्तुविषयं शुद्धं गेयं प्रहसनं तु[55] ।।

संकीर्ण प्रहसन का स्वरूप :

वेश्याचेटनपुंसकविटधूर्ता बन्धकी च यत्र स्युः ।
अनिभृतवेशपरिच्छदचेष्टित करणैस्तु संकीर्णम्[56] ।।

प्रहसनों के विभेद के विषय में सागरनन्दी[57] तथा नाट्यदर्पणकार[58] में मतैक्य है। सागरनन्दी ने भगवदज्जुकीयम् को संकीर्ण प्रहसन माना है।

शारदातनय ने संकीर्ण (सैरन्ध्रिका), शुद्ध (सागर कौमुदी) तथा विकृत तीन प्रकार के प्रहसनों को स्वीकार किया है[59]। सिंगभूपाल को इसके शुद्ध, कीर्ण तथा विकृत तीन रूप अभिप्रेत हैं[60]।

धनञ्जय[61] के अनुसार शुद्ध प्रहसन पाखण्डी विप्र, चेट, चेटी, तथा विट आदि से भरा होता है तथा जो हास्य वचनों से परिपूर्ण होता है।

विकृत प्रहसन कामुक जनों के बोलने वाले एवं उनके वेश को धारण करने वाले नपुंसकों, कञ्चुकियों तथा तपस्वियों से युक्त होता है। तथा जो वीथी के अङ्गों से युक्त व धूर्तो से भरा होता है वह संकीर्ण प्रहसन है। दशरूपककार इसी को सङ्कर प्रहसन कहते हैं[62]। विश्वनाथ कविराज संकीर्ण में ही विकृत का अन्तर्भाव मानते हैं[63]।

सिंगभूपाल ने प्रहसन के दस अङ्ग[64] स्पष्ट किए हैं। यह दस अंग वीथ्यङ्ग ही हैं। दशरूपककार धनञ्जय के अनुसार संकीर्ण

प्रहसन वीथ्यङ्ग[65] युक्त होता है परन्तु वीथ्यङ्ग तो प्रहसन के अङ्ग होते हैं न कि संकीर्ण प्रहसन के। अतः प्रहसन के क्षेत्र में वीथ्यङ्ग व्यापक हैं। यह आवश्यक नहीं कि वीथी के समस्त तेरह अङ्ग प्रहसन में विद्यमान ही हों[66]। अस्तु प्रहसन के अंग वीथ्यङ्ग पर आधारित नहीं हैं अपि तु वीथ्यङ्ग ही प्रसहन के भी अङ्ग होते हैं।

---

1 त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।। 107 ।।
नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।। 112 ।। नाट्यशा. अ।

*   *   *

अवस्थानुकृतिः नाट्यम् ....दशरूपकम् - 1/7

2 नाट्यशास्त्रम्- पृ0 143 (अभिनव भारती टीका) सं0 मधुसूदन शास्त्री।

3 यो ऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमभिधीयते।। 121 ।। नाट्यशा. अ.।

4. क्वचिद्धर्मः क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छ्रमः ।
क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित्कामः क्वचिद्वधः ।। 108 ।। वही

5 न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाटकेऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।। 117 ।। वही

6 एतद्रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियास्वथ ।। 114 ।। वही

*   *   *

................रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तत्समारोपात्, दशधैव रसाश्रयम् ।। दशरूपकम् 1/7

7 विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। नाट्यशा.-अ.6 8. दशरूपकम् - 4/1 तथा काव्यप्रकाशः - 4/27-28 9. भगवदज्जुकीयम् प्रहसनम् - पृ. 4/5 सं. पी अनुजन्अचन।

10 allapa (sallāpā) i.e. samlapaka or 'discourse' appear as a type of drama else where, but vara (Vārā) seems to be otherwise quite unknown. Bhagvadajjukiyam : Preface, by M. winternitz.

11 Now we are to take up the question whether we are to call sanllapa and vara rupakas or uprupakas. Our author (i.e. Prof. M. winernitz.) is silent on the point. - Bhagwadajjukiyam (some new problems) summaries of paper's submitted to the fourth oriental conference allahabad - 1926, page 49-51; by A.N. Bhattacharya.

12 It would not be, therefore wrong to add the prologue give us a list of no less th
12 rupakas instead of ten.- Ibid

13. वारः (वृ-घञ्) -Door, gate, Prin Vaman shivram Apte's - The Practical sans'
english dictionary. Ed. P.K. Gode & C K. Karve - 1959

*   *   *

वारः सूर्यादिदिवसे वृन्दावसरयोः क्षणे।
द्वारे हरे कुब्जवृक्षे वारं स्याद्वालकेऽम्बुनि ।। पृ.-206
अर्गला त्रिषु कल्लोले दण्डे वारकपाटयोः । पृ.-301

-Sabdaratnasamanvay akosa of king shahaji of Tanjore, Baroda Orien tal Seri
1932

*   *   *

वार -वृ-घञ्। 1. सङ्घे, 2. अवसरे 3. द्वारे 4. शिवे, 5. कुब्जवृक्षे, 6 क्ष
।-वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ0 4881 सं तारानाथ भट्टाचार्य ।

14 नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च ।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनः डिमः ।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्य लक्षणे । नाट्यशा. 18/2-3

15 ज्ञेयं प्रकरणं चैव तथा नाटकमेव च ।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नं नानाबन्धसमाश्रयम् ।।7।।
विथी समवकारश्च तथेहामृग एव च ।
उत्सृष्टिकाङ्को व्यायोगो भाणः प्रहसनः डिमः ।।8।।
कैशिकी वृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत् ।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि काव्यबन्धविकल्पनम् ।।9।। वही

16. शब्दरत्नसमन्वयकोष पृ.-93 / Practical Sanskrit-english Dictionary - Pri
vaman shivram Apte, page-1588, Prasad Prakashan Poona

17 मध्यकालीन संस्कृत नाटक, अध्याय-12, डॉ0 रामजी उपाध्याय। 18. शब्दस्तोमहानिधि.
श्री तारानाथ भट्टाचार्य। 19. Sanskrit-english Dictionary - M. Monier William.

20 शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।। काव्यप्रकाशः -4/29

21. नाट्यशास्त्रम् अध्याय-6. 22. अथ हास्यो नाम स्थायिभावात्मकः। स
विकृतपरिवेषालंकार धार्ष्ट्यलौल्य कुहकासत्प्रलाप व्यंग्यदर्शन दोषोदाहरणादिभिर्विभ
वैरुत्पाद्यते। नाट्यशा. अ.6।

23. भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्विकस्तथा ।।

साहित्यदर्पणः 6/2, विश्वनाथ कविरा

24 अग्निपुरणम्, 339/2 25. नाट्यशास्त्रम्, अध्याय–6 26. काव्यमीमांसा, राजशेखर।
27 वाक्यं रसात्मकं काव्यं।–साहित्यदर्पणः 1/3, विश्वनाथ कविराजः। 28. एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्–उत्तररामचरितम्, भवभूति। 29. संस्कृत में एकांकी रूपक – डॉ वीरबाला शर्मा।

30 शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः ।। नाट्यशा. 6/40

31 स्वादः काव्यार्थसम्भेदात्मानन्दसमुद्भवः ।
विकासविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ।। 43 ।।

शृंगारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ।। 44 ।।
अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम्।

दशरूपकम्–चतुर्थप्रकाश

32 नाट्यशास्त्रम्, 6/41 33. प्रीतिर्विशेषः चित्तस्य विकासो हास्य उच्यते। भावप्रकश. 34 संस्कृत में एकांकी रूपक – डॉ0 वीरबाला शर्मा। 35. नाट्यशास्त्रम्, 6/40 36. रजोहीनत्वाद् हास्य संभवः। – भावप्रकाश. 37. संस्कृत में एकांकी रूपक – डॉ0 वीरबाला शर्मा। 38. The Sanskrit Drama - A.B. Keith. 39. अनौचित्य प्रवृत्तिरेव ही हास्य विभावत्वम् – नाट्यशास्त्रम्, अध्याय–6 40. परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते। नाट्यशास्त्रम् – 7/10 41. Essay of criticism - Pop. 42. औचित्य विचार चर्चा – क्षेमेन्द्र (प्रभा संस्कृत हिन्दी व्याख्या अवतारणा पृ0 11)। 43. नाट्यशास्त्रम् (अभिनव भारती टीका) सं0 मधुसूदन शास्त्री। 44. वही –अ0 6, पृ0 316, प्रदीप हिन्दी व्याख्या; स0 बाबू लाल शुक्ल। 45. नाट्यशास्त्रम् – 6/53 46. हास्यस्तु भूयसा कार्यः षट्प्रकारैस्ततस्ततः। –भावप्रकाशः 47. परचेष्टानुकणाद्धासः समुपजायते। नाट्यशास्त्रम – 7/10।

48 लोकाह्लादाश्रयकृतं सर्वप्रकृतिवद्रूपधारसंयुक्तम् ।
नानाश्रयं प्रकुरुते तथा च नार्याश्रयं वापि ।। 12 ।।

प्रत्युत्पन्नप्रतिभो नर्मकृतैर्नर्मगर्मनिर्भेदैः ।
छेकविदूषितवचनो विदूषको नाम विज्ञेयः ।। 93 ।। नाट्यशा. अ.35

49 विदूषकोऽपि सर्वत्र विनोदेषूपयुज्यते– भावप्रकाशः, 10/28 50. दशरूपकम्, 3/33–34 51 साहित्यदर्पण, 6/264, 6/227–230, विश्वनाथ कविराज। 52. भाणवत् प्रहसनम् तत्– भावप्रकाशः, शारदातनय।

53 वस्तु संध्यंगलास्यांगवृत्तयो यत्र भाणवत् ।
रसो हास्यः प्रधानः स्यादेतत्प्रहसनं स्मृतम् ।। 276 ।। नाटकपरिभाषा– सिंगभूपाल

54. नाट्यशास्त्रम्। अध्याय – 18/159, 55. वही नाट्यशास्त्रम्, 18/156 । 56. वही नाट्यशास्त्रम्, 20। 57. तद्द्विविधं शुद्धं संकीर्णं च । नाटकलक्षणरत्नकोश–सागरनन्दी।

58 वृत्ति प्रहसन द्विधा नाटयदर्पण 59 अधिकार 8 60 नाटक परिभाषा 285–289, सिंगभूपाल, संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता।

61. पाखण्डिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम् ।। 54 ।।
चेष्टितवेषभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोऽन्वितम् । दशरूपकम्, तृतीयप्रकाश ।

62. वही। 63. साहित्यदर्पणः – 6/265–268 64. नाटकपरिभाषा 276–285, सिंगभूपाल।
65. दशरूपकम् 3/54–55। 66. साहित्यदर्पणः– परिच्छेद–6।

अध्याय–2

प्रहसन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

किसी भी राष्ट्र, देश, समाज, जाति, व्यक्ति एवं विषय (शैक्षिक) के क्रमिक विकास का लिपिबद्ध अभिलेख ही उसका इतिहास होता है। इसका सम्बन्ध अतीत से अधिक एवं प्रत्यक्ष होता है। हाँ! समसामयिकता को यह अतीत के परिप्रेक्ष्य में किम्पि उजागर तो करता ही है साथ ही विषय के अग्रिम स्वरूप का भी कभी–कभी क्वचित् आभास देता है। परन्तु प्रत्येक क्षेत्र में यह आभास दे ही यह आवश्यक भी नहीं है। तथापि जिज्ञासु की कलम वहाँ भी पहुँच जाती है जहाँ रवि अपनी असमर्थता बताता है। विशिष्ट रूप से यह तथ्य साहित्य के क्षेत्र में तो सर्वमान्य व शाश्वत है ही और हम भी इसी के स्वीकर्ता हैं, क्यों कि आगे जिस वस्तु की हम चर्चा करने चल रहे हैं वह साहित्य के ही अङ्गों व उपाङ्गों में गिना जाता है।

'नाट्यशास्त्र' संस्कृत वाङ्मय की विभिन्न विधाओं में से एक है। इसमें रूपकों के स्वरूप व उनके तत्त्वों का अध्ययन निहित होता है। रूपक दश प्रकार के होते हैं। प्रहसन भी एक प्रकार का रूपक है। इसके स्वरूप वा विकास का अध्ययन प्रहसन साहित्य के इतिहास का विषय है। प्रहसन रूपक का अङ्गी रस हास्य होता है। अस्तु स्वाभाविक है कि यह विधा हास्य साहित्य के विकास से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित है। आइए थोड़ा देखते हैं कि हास्य रस प्रधान यह 'प्रहसन रूपक' कैसे–कैसे विकास के सोपानों को पार कर इस स्वरूप तक पहुँचता है तथा इसके सतत पल्लवन में किसका कितना योगदान है।

दक्षिण भारत का संस्कृत रूपकों के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। **भास** भी इसी प्रान्त के थे।

भास कृत दामक प्रहसन के पश्चात् बौद्ध–धर्म के पराभव कालीन युग में ही **भगवदज्जुकीयम्** प्रहसन की रचना कवि **(बोधायन)** द्वारा की गयी। इस प्रहसन में **सांख्य** व **योग** की महती शक्ति का समर्थन किया गया है। तथा बौद्ध धर्म व उसके अनुयायियों पर व्यंग्य। कवि ने इस रचना में **परकाय–प्रवेश** को उद्धृत कर अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। प्रहसन में हास्य तत्त्व अश्लीलता– पूर्ण न होकर विदूषक की मूर्ख–प्रवृत्तियों के अनुरूप है। यह ईसा की छठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना है।

ईसा की सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण में पल्लव नरेश **महेन्द्रविक्रम वर्मा** ने मत्तविलास प्रहसन की रचना की। प्रहसन में जैन एवं बौद्धों पर व्यंग्यपूर्ण प्रहार है। इनके अनुयायियों के नैतिक मूल्यों में किस प्रकार का पराभव हुआ था। इसका इस प्रहसन में भली भांति चित्रण शाक्य भिक्षु के क्रिया कलापों से स्पष्ट होता है। **शैवदर्शन** की विभाजित होती हुयी शाखाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कापालिक एवं पाशुपत नामक पात्रों के वैचारिक स्तर का आभास भी इनके क्रियाकलापों द्वारा होता है। मत्तविलास प्रहसन में तत्कालीन समाज की प्रथाओं का चित्र अत्यंत सफलता पूर्वक कवि ने चित्रित किया है।

12वीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में कविराज **शंखधर** द्वारा **लटकमेलक** प्रहसन की रचना की गयी। इसका कथानक मनोरंजक है। प्रहसन संकीर्ण कोटि का है। दो अङ्कों में निबद्ध इस प्रहसन की कथावस्तु शाक्त व जैन साधुओं के चारित्रिक पतन व प्रेम–कहानी पर आधारित है।

12वीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में **वत्सराज** कवि द्वारा **हास्यचूड़ामणि** प्रहसन की रचना की गयी। धार्मिक कृत्यों से दूर लौकिक कार्यों की अनुरक्ति पर इसकी कथा आधारित है।

ईस्वी सन् 1325 में ज्योतिरीश्वर द्वारा धूर्तसमागम तथा मुण्डित प्रहसन की रचना की गयी। धूर्तसमागम में ऐतिहासिक तथ्यों की उपलब्धि इसके महत्त्व का कारण है। मुण्डित प्रहसन के कृतित्व का विषय विवादास्पद है।

ईसा की 15वीं शताब्दी में दार्शनिक कवि शंकर मिश्र ने गौरीदिगम्बर प्रहसन की रचना की। इसमें शङ्करजी तथा गौरी (पार्वती) के विवाह का प्रसङ्ग चित्रित है। प्रहसन में भोंड़ी एवं नग्न शृङ्गारिकता कवि एवं कवि की कृति दोनों पर ही यदि उँगली उठाये तो कुछ अन्यथा नहीं होगा। ऐसी नग्नता से भावों के गाम्भीर्य पर ग्रहण लगना स्वाभाविक व समीचीन है।

16वीं शताब्दी ईस्वी के अन्तिम चरण में कौतुक- रत्नाकर नामक प्रहसन कवितार्किक द्वारा रचा गया। कवि तार्किक भुलुय्या के राजा लक्ष्मण माणिक्य के पुरोहित थे। भुलुय्या, नोआखाली में स्थित है। कौतुकरत्नाकर नामक प्रहसन के नायक दुरित्तार्णव नाम के एक राजा हैं। वह दुर्बल तथा मूर्ख दोनों ही हैं। राजा दुरितार्णव की पत्नी उद्दण्ड व कुटिल स्वभाव की है। इनकी पत्नी का अपहरण हो जाता है। अपने धूर्त अनुचरों को पत्नी का पता लगाने का कार्य राजा ने सौंपा। इनकी पत्नी का संबंध सुशीलान्तक नामक नगर रक्षक से था। वह इसकी अंकशायिनी होकर पूर्वतः ही अपहृत हो चुकी थी।

राज्य में वसन्तोत्सव होने वाला था। बिना अर्द्धाङ्गिनी के राजा इसमें सम्मिलित नहीं हो सकते थे। राजा के चाटुकार मन्त्रियों एवं सेनापतियों की मन्त्रणा के अनुसार अनङ्गतरङ्गिणी नामक वेश्या ने राजा की पत्नी की प्रतिपूर्ति की। इसी क्षण यह बात प्रकाश में आयी कि कपटवेशधारी नामक ब्राह्मण ने राजा की पत्नी का अपहरण किया है। इसी ब्राह्मण ने, अब वेश्या अनङ्गतरङ्गिणी से प्रेम करना प्रारंभ ही किया था कि वेश्या ने उसे ऐसा पटका कि उसकी नाक से खून की धारा बह चली। सब कुछ अनीतिपरक होने के बाद भी वसन्तोत्सव के राग रंग में धुल गया।

कवि तार्किक ने समाज में प्रचलित कतिपय विषमताओं पर भी बहुत ही रोचक दृष्टिपात किया है।

ईसा की 17वीं शताब्दी के मध्य भाग में रामानन्द ने हास्यसागर प्रहसन की रचना की। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस प्रहसन का विशेष महत्त्व है। संस्कृत-प्रहसन साहित्य का यह प्रथम प्रहसन है जिसमें हिन्दी का भी प्रयोग किया गया है। मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं पर किए गए अत्याचार से प्रहसन अछूता नहीं है। इसकी कथा एक कुलकलङ्किनी ब्राह्मण कन्या के दुराचार पर आधारित है।

प्रहसन साहित्य को परिवर्धित करने में **हरिजीवन मिश्र** व **श्री** जीव न्यायतीर्थ का नाम समादृत है। ईसा की 17वीं शताब्दी में हरिजीवन मिश्र ने अद्भुतरङ्ग, प्रासङ्गिक, पलाण्डुमण्डन, विबुधमोहन, सहृदयानन्द, तथा धृतकुल्यावलि प्रभृति प्रहसनों की रचना की। मिश्र जी के प्रहसन सरल भाषा में एवं संयत भावों के साथ विकसित हैं[18]। इसमें अश्लीलता एवं नग्नता का अभाव है। इनके नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ अनूप लाइब्रेरी बीकानेर में उपलब्ध हैं।

ईसा की 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही सामराज दीक्षित ने धूर्तनर्तक प्रहसन की रचना की। प्रहसन की भित्ति, पात्रों के धूर्तता पूर्ण आचार के आधार को सुदृढ़ता से पकड़े हुए है।

ईस्वी सन् 1684 से 1711 के मध्य **वेंकटेश्वर** ने तीन प्रहसनों की रचना की - **भानुप्रबन्ध**, **वेङ्कटेश** तथा **लम्बोदर**। वेङ्कटेश्वर को तंजौर के राजा शाह जी ने सम्मानित किया था। इन वेंकटेश्वर के पिता का नाम श्री दक्षिणामूर्ति था। इसका उल्लेख इन्होंने भानुप्रबन्ध के भरत वाक्य में किया है। जो निम्नवत् है-

भूपाः पुण्यपथे चरन्तु भवतु क्षेमं नृणां सर्वतः।
कालेष्वोषधयः फलन्तु कवयः खेलन्तु राजप्रियाः।।
कौण्डिन्यान्वयमण्डनायजनित-श्री दक्षिणामूर्तिनः।
काव्यस्यास्य च वेंकटेश्वर-कविः कर्ता चिरं जीवतु।।

इन वेंकटेश्वर से भिन्न एक अन्य वेंकटेश्वर (1728 ईस्वी) भी हुए हैं जिन्होंने **उन्मत्तकविकलश** प्रहसन की रचना की है। इनके इस प्रहसन में अत्यंत निम्न स्तरीय कामुकता व श्रृङ्गारिकता का चित्रण है। इसकी रचना करके कवि वेंकटेश्वर खुद भी अत्यन्त विषादग्रस्त हो उठे थे। इसकी रचना से इनके आत्माभिमान को बड़ी चोट पहुँची थी।

ईसा की 18वीं शताब्दी के प्रथम चरण में **घनश्याम** कवि ने **डमरुक** तथा **चण्डानुरंजन** नामक प्रहसनों की रचना की। चण्डानुरंजन नग्न व्यभिचारिता का एक निकृष्ट उदाहरण है। डमरुक एक उच्चकोटि का प्रहसन है। यद्यपि कवि ने इसको एक नयी नाट्य विधा की संज्ञा दी है-

प्रहसनडमरुकनाटकसट्टककाव्यद्विमंजरीभाणान्।
देवताटंकलिपि कृतवान् यश्चान्यमिष्टशतचम्पूम्।।

(नवग्रह चरित)

इसी समय **रामपाणिवाद** द्वारा **मदनकेतुचरित** प्रहसन की रचना की गयी। इस प्रहसन पर **भगवदज्जुकीयम्** का पर्याप्त प्रभाव है। भगवदज्जुकीयम् की ही भाँति इस प्रहसन में भी भाव गाम्भीर्य देखने योग्य है।

ईसा की 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही **जगदीश्वर भट्टाचार्य** द्वारा **हास्यार्णव** प्रहसन की रचना की गयी। **हास्यार्णव** प्रहसन विषय की दृष्टि से सुष्ठु व रोचक है। इसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **सान्द्रकुतूहल, कुक्षिम्भर- भैक्षवम्, कौतुकसर्वस्व** तथा **कुहनाभैक्षवम्** नामक प्रहसन क्रमशः **कृष्णदत्त, प्रधान वेंटप्पा, गोपीनाथ चक्रवर्ती** तथा **तिरुमल** कवि द्वारा रचे गए। इन सभी प्रहसनों की कथा कामुकता, धूर्तता तथा चारित्रिक पतन पर आधारित है। कुक्षिम्भर-भैक्षवम् प्रहसन शास्त्रीय दृष्टिकोण से अवश्य ही उल्लेखनीय है। इस प्रहसन में प्रस्तावना[19] के पश्चात् विषकम्भ[20] का प्रयोग अशास्त्रीय है। इस प्रहसन में भल्लूक विदूषक की प्रस्तुति भी अशास्त्रीय है[21]।

18वीं शताब्दी में ही **भूदेव शुक्ल** ने **धर्मविजय** नामक पाँच अंकों की प्रहसन प्रधान कृति का प्रणयन किया। धर्मविजय अपने क्षेत्र का विलक्षण रूपक है[22]। अन्य प्रहसनों की भाँति इसमें भी पाखण्ड का भण्डाफोड़, मानवीय दुर्बलताओं व समाज की विकृति का चित्रण है।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में **स्वैराचार प्रहसन नारायण शास्त्री** द्वारा तथा **यदुनन्दन** द्वारा **नाटवाट** प्रहसन की रचना की गयी। यद्यपि कि नाटवाट प्रहसन के रचनाकाल के सम्बन्ध में साहित्यिकों में कुछ मतभेद अवश्य मिलता है, परन्तु बहुसंख्यक समीक्षकों ने इसे 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना माना है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यदुनन्दन के नाटवाट प्रहसन का महत्व तो साहित्यिकों द्वारा आंका जाता है परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस प्रहसन का कोई विशेष स्थान व महत्व नहीं है। प्रहसन में नट वर्ग (नर्तक) के राहगीरों का अनर्गल, अशास्त्रीय व विपर्ययात्मक वार्तालाप है। इसके पात्रों का नामकरण विचित्र ही है। नामकरण की दृष्टि से यह प्रहसन लटकमेलक की भाँति ही कुछ विचित्र सा लगता है। जैसा कि प्रायः प्रहसनों में होता है पात्र अपने चतुर्विध अभिनयों के द्वारा दर्शकों का मनोरञ्जन करते हुए से होते हैं वैसा ही कुछ इस प्रहसन में भी है। ज्योतिषाचार्य ज्योतिष से दूर हैं तो वैद्य जी वैद्यकी से अनभिज्ञ। ऐसी परिस्थिति में इनके क्रियाकलाप का विपरीतार्थक होना स्वाभाविक है। और विपर्यय हास्योद्भावक तो होता ही है।

पूरा प्रहसन दो सन्धियों में विभक्त है। प्रहसन की कथा भी अविच्छिन्न नहीं चलती। पहली सन्धि के कुछ पात्र भी दूसरी सन्धि में नहीं रहते। प्राचीन कालीन रामलीलायें जैसे मंच पर हुआ करती थीं प्रहसन पर कुछ वैसी ही छाया परिलक्षित होती है।

ईसा की 20वीं शताब्दी को प्रहसनों की आंधी का काल कहा जाय तो संभवतः अत्युक्ति न होगी। इस शताब्दी में प्रहसनों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुयी।

सन् 1944 से 1968 के मध्य (रचना काल) श्रीजीव न्यायतीर्थ ने लगभग सोलह प्रहसनों की रचना की। विधिविपर्यास प्रहसन हिन्दूकोड बिल के ऊपर एक व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया है। इसमें पात्रों के चारित्रिक विकास का कलात्मक संगठन है। विवाहविडम्बन प्रहसन में श्रीजीव ने न केवल बंगाली समाज पर अपि तु पूरे हिन्दू समाज की कुरीतियों पर तीखी व आलोचनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

रामनामदातव्य चिकित्सालय एक प्रकार की व्यंग्यात्मक रचना है, जिसमें पर्याप्त हास्य सामाग्री है। चौरचातुरी प्रहसन में श्री जीव ने चौर्यकला के विविध निगूढ़ पक्षों का अनावरण किया है। पात्रो के संवाद तथा अभिनय हास्योत्पादक हैं।

दरिद्रदुर्दैवम् श्री जीव न्यायतीर्थ का अत्यंत उत्कृष्ट प्रहसन है। इसकी कथा बड़ी रोचक है। वक्रेश्वर नामक एक गरीब ब्राह्मण है, जो भिक्षाटन से अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण करता है। उसके परिवार में उसकी पत्नी एवं दो पुत्र हैं। परिवार सीमित है।

एक बार वक्रेश्वर ने भिक्षाटन में अपर्याप्त मात्रा में चावल प्राप्त किया। यह चावल परिवार के चारों सदस्यों की क्षुधापूर्ति हेतु काफी नहीं था क्योंकि उसकी पत्नी तथा पुत्र कुछ अधिक क्षुधित थे। वह जानता था कि इतना थोड़ा सा चावल तो वे सभी हउहा कर लील लेंगे। इसलिए वक्रेश्वर ने इसका कुछ अंश बचा कर चुपके से अपने शाल में छिपा कर रख लिया।

वह घर गया। उसकी पत्नी ने उसे अत्यन्त अव्यवस्थित व परेशान सा पाया। वक्रेश्वर के पास जितना कुछ थोड़ी मात्रा में चावल था वह उन सभी की क्षुधा शान्ति में अत्यन्त न्यून सिद्ध हो रहा था। पत्नी का कुपित होना स्वाभाविक था। फिर क्या था? फिर तो वह वक्रेश्वर पर ज्वालामुखी के लावे की भाँति फूट पड़ी और अपने अभागे पति को बरंबार कोसने लगी। वक्रेश्वर अपनी पत्नी के इस कोप को बड़ी कठिनता से पचा पाया। वह अत्यंत उदासी

व उद्विग्नता में घर छोड़ कर बाहर निकल पड़ा। उसने अपनी पत्नी व बच्चों को भगवान के भरोसे छोड़ दिया। लेकिन उसकी पत्नी ने उसे पीछे से शाल की गांठ पकड़ कर खींचा। इसी गांठ में उसने अपने लिए चावल छिपा कर रख रक्खा था। पत्नी की इस खींचतान में शाल की गांठ खुल गयी। फिर क्या था? फिर तो गांठ से बाहर निकल कर चावल छितरा गया और बिन चिल्लाए ही ब्राह्मण की चावल–चोरी का भेद खोल दिया। ब्राह्मण को काटो तो खून नहीं। उसे तो सांप सा सूंघ गया। बेचारा ब्राह्मण झुंझला कर रह गया तथा पत्नी के द्वारा वह बलात् वापस कर लिया गया।

अनन्तर वक्रेश्वर अपनी पत्नी व बच्चों को लेकर भिक्षाटन हेतु बाहर निकल पड़ा। सूर्य था कि उसकी प्रचण्डता कम ही न होना चाह रही थी। प्रखर मार्तण्ड ने सभी को तपा दिया। सभी के गले सूख गए। बच्चे एक वृक्ष की छाया में लेट गए। इसी बीच एक धनिक वणिक उस रास्ते से गुजरा। वक्रेश्वर के पूरे परिवार ने उसके समक्ष भिक्षा हेतु हाथ पसार दिया। चतुर व कृपण वणिक उन सबको चकमा देकर बिना भिक्षा दिए ही आगे बढ़ गया।

देवदूत का एक जोड़ा जो कि उधर से होकर गुजर रहा था ने भिखारी के उन तरुणों की परेशानी को देखा। वे बुरी तरह से मूर्च्छित हो रहे थे। ये सुदर्शन देवदूत भगवान शिव की नगरी से आए थे। उनके पास एक जादुई पाँसा था जो मनोवांछित की पूर्ति करने वाला था। देवदूती ने अपने पति से जादुई पाँसे की सहायता से उन तरुणों को जल उपलब्ध कराकर उन्हें राहत पहुँचाने हेतु विनय किया। पुरुष देवदूत ने अपने इस जादुई पाँसे की सहायता से उन बच्चों की तृषा तृप्ति हेतु जल की व्यवस्था कर दिया। उन तरुणों को जल पिलाकर उनको जीवन दान दिया गया। सहृदय देवदूती ने अपने पति से विनय किया कि वह वक्रेश्वर को एक जादुई पाँसा उपहार स्वरूप उपलब्ध करा दे।

गरीब ब्राह्मण को देवदूत ने एक जादुई पाँसा उपलब्ध करा दिया। इस पाँसे का उपयोग वह पर्याप्त मात्रा में चावल प्राप्त करने हेतु करता था। वह जो कुछ भी कामना करता था अब इसकी सहायता से उसे उपलब्ध हो जाती थी। उस अकिञ्चन ब्राह्मण ने देखा कि उसके पड़ोसी के पास भी पर्याप्त मात्रा में चावल है। वह अपने पड़ोसी की समृद्धि से ईर्ष्या करने लगा। वक्रेश्वर ने बस दूसरे क्षण ही पाँसे से कामना व्यक्त की कि पड़ोसी व उसके सहयोगियो को अकिञ्चन बना दे। पुरुष देवदूत यह जो कुछ भी हो रहा था अत्यंत गम्भीरता से देख रहा था। दरिद्र वक्रेश्वर की ईर्ष्यालु कामना के अनुरूप आगे कुछ अप्रिय घटित हो पाता कि इससे पहले ही देवदूत ने झपटकर उस पाँसे को पुनः अपने कब्जे में प्रत्यावर्तित कर प्रच्छिन्न हो गया।

सम्पूर्ण प्रहसन मानवीय दुर्बलताओं का नग्न चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण रूपेण सफल है। मनुष्य की संकीर्णता उसको इतना नीचे गिरा देती है कि वह जियो और जीने दो को भूल कर मात्र जियो और केवल खुद ही जियो को याद रख पाता है।

श्री जीव न्यायतीर्थ ने **चण्डताण्डव, क्षुतक्षेमीय, शतवार्षिक, वनभोजन, स्वतन्त्रसन्धिलक्षण, पुरुषरमणीय, भट्टसंकट रागविराग तथा चिपिटकचर्वण** नामक प्रसहनों में भारतीय निर्धनता, सामाजिक कुरीति तथा विदेशी शासकों के उत्पात पर व्यंग्य किया है। उक्त प्रहसन के अतिरिक्त श्री जीव न्यायतीर्थ के दो अन्य प्रहसन **तैलमर्दन व नष्टहास्य** भी प्रकाशित हुए हैं।

वाई. महालिङ्ग शास्त्री ने बीसवीं सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में **कौण्डिन्य, उभयरूपकम्** तथा **शृङ्गारनारदीयम्** नामक प्रहसनों की रचना की। शास्त्री जी के तीनों प्रहसन समसामयिकता से प्रभावित व अश्लीलता से परे हैं।

कौण्डिन्य प्रहसन परम्परागत शृङ्गारिकता से दूर प्रबुद्ध तथा सुसंस्कृत समाज के मनोरंजन की विषय वस्तु अपने में संजोए है।

गृधनास की पत्नी जिम्हला है। कौण्डिन्य एक परान्नव्रती पात्र है। वह दूसरों के ही भोजन पर अपना जीवन चला रहा है।

गृधनास ने द्वादशी तिथि को प्रातः काल पारण किया। पारणोपरान्त उसने पत्नी को चिउरा बनाने हेतु कहा। उसे अपराह्न के भोजन की चिन्ता जो थी। पत्नी ने गृधनास से बाजार से भोज्य सामग्री लाने को कहा। गृधनास सामग्री लेने बाजार तो जाता है लेकिन उसे डर है कि कहीं इस बीच कौण्डिन्य न आ धमके अस्तु जाते जाते वह अपनी पत्नी को सचेत करता है।

गृधनास बाजार चला जाता है। कौण्डिन्य ने कहीं से गृधनास को बाजार में भोज्य पदार्थों का क्रय करते देख लिया। उसने तत्काल ही समझ लिया कि गृधनास आज निश्चितरूपेण पक्वान बनवायेगा। फिर क्या था? कौण्डिन्य गृधनास के दरवाजे आ धमका और बन्द दरवाजे पर ही बरामदे में आसन जमा कर बैठ गया। अब बिना भोजन किए वह कहाँ टलने वाला?

बाजार से प्रत्यावर्तित गृधनास ने दूर से ही दरवाजे पर बैठे कौण्डिन्य को देख लिया। वह दृष्टि बचा कर पीछे के द्वार से भीतर आता है। गृधनास से पत्नी ने बताया कि कौण्डिन्य तो दरवाजे पर आ धमका है। पति-पत्नी ने यह निश्चय किया गर्म भोजन करने के उपरान्त ही कौण्डिन्य से मिला जाय।

कौण्डिन्य ने पति-पत्नी की इस वार्ता को चुपके से सुन लिया और वह भी पीछे के दरवाजे से घर के भीतर प्रविष्ट हुआ। पत्नी पीछे का दरवाजा बन्द करने में सफल न हो सकी। परिणामतः कौण्डिन्य भीतर घुस ही गया। वह पीछे भाग कर आयी और अपने पति से बोली- 'पीछे के दरवाजे से चोर घुस आया है। हे नाथ! क्या किया जाय'? कहते कहते पत्नी रो पड़ी। इधर गृधनास गर्म गर्म चिउरे को हबर हबर खाने में जुट गया। चिउरा इतना गर्म था कि गृधनास की जीभ जल गयी। वह चीख उठा। उसकी आँखें निकल आयीं। पत्नी ने गृधनास के मुँह में फूंक मार कर राहत देने

का प्रयास किया। पति की गम्भीर होती स्थिति को देख पत्नी ने कहा- 'नाथ! आप के न रहने पर फिर मैं ही क्या करूँगी? मैं भी मर जाऊँगी'। उनकी वार्ता हो ही रही थी कि कौण्डिन्य पहुँच आया। कौण्डिन्य ने पूँछा- 'इन्हें क्या हुआ है'। पत्नी ने बताया कि इन्हें मुँह में बड़ा सा फोड़ा हुआ था। इसी से यह विलख रहे हैं। कौण्डिन्य ने कहा कि अभी तो मैंने इन्हें बाजार में भला चंगा देखा था। प्रत्युत्तर में जिह्मला बोली कि यह वैद्य के यहाँ औषधि हेतु गए थे। आप सहायतार्थ कोई वैद्य तत्काल बुला दीजिए। कौण्डिन्य ने जिम्हला से आँचल हटा कर गृधनास को दिखाने के लिए कहा परन्तु उसने गृधनास के ढके हुए मुँह से अपना आँचल न हटाकर कौण्डिन्य से वैद्य बुलाने का बराबर अनुरोध करती रही। रोगी की गम्भीरता का संकेत भी उसने कौण्डिन्य को दिया। कौण्डिन्य भी ऊँचे दर्जे का चालबाज़ था। वह वैद्य बुलाने के लिए बाहर निकला और दरवाजे के बगल में ही भुसौली के समीप छिप गया। जिह्मला जब दरवाजा बन्द करने हेतु आयी तो उसने कौण्डिन्य को समीप में छिपा पाया। गृधनास ने जब पत्नी से यह बात सुनी तो बोला- 'यह पापी तो ब्रह्मराक्षस की भाँति ही मेरे पीछे पड़ गया है। इससे कैसे पीछा छुड़ाया जाय'? पीछा छुड़ाने के मामले में उन दोनों (पति-पत्नी) में अपनी अपनी युक्तियों को अपनाने में कुछ तर्क वितर्क हुआ। पत्नी ने कहा कि इसे मैं छल से भगाऊँगी। गृधनास ने कहा- 'नहीं! नहीं! इसको मैं यूँ ही मूसलों से मार मार कर भगा दूँगा'।

पत्नी ने छल का आश्रय ग्रहण कर चिल्लाना प्रारम्भ किया। मुझे बचाओ! बचाओ! गृधनास ने कहा- 'तुम्हें ब्रह्मराक्षस परेशान कर रहा है'। पत्नी ने कहा- 'कल दन्तुरा ने बताया था कि पीपल के पेड़ में जो ब्रह्मराक्षस है उसने ब्रह्मचारी का रूप धारण करके उससे कल भिक्षा की याचना की थी। दन्तुरा के पति ग्रन्थिल ने जब उसे मूसल लेकर मारना चाहा तो वह राक्षस भागकर दरवाजे

के पीछे छिप गया' अरे मैं ग्रन्थिल का भी चाचा हूँ' इस प्रकार कहता हुआ गृधनास मूसल लेकर कौण्डिन्य पर टूट पड़ा।

कौण्डिन्य, गृधनास व उसकी पत्नी की बात चूंकि सुन रहा था तथा पहले से ही सचेत था। उसने भुसौली से सूप में भूसा लेकर गृधनास के मुँह पर फेंक मारा। गृधनास की आँखों में भूसा भर गया और वह आँख मिलमिलाने व भींचने लगा। पीड़ा से परेशान होकर उसने परित्राण हेतु पत्नी को पुकारा। अवसर पाकर कौण्डिन्य यह कहते हुए चिउरा पर झपट पड़ा कि तुम तो भुस का भोजन करो और मैं चिउर खाता हूँ। पुनश्च वह जिह्मला से बोला कि मैंने तुम्हारे पति को अगले जन्म में ब्रह्म- राक्षस होने से बचा लिया, क्योंकि अतिथि का अनादर अगले जन्म में मनुष्य को ब्रह्मराक्षस बनाता है।

महालिङ्ग को एकोक्तियों पर बड़ा भरोसा है। कौण्डिन्य प्रहसन ही क्या, महालिङ्ग के शेष प्रहसनों में भी एकोक्तियों का विशेष दर्शन होता है।

प्रहसन में पात्रों के नाम तो हास्योद्भावक हैं ही लेकिन प्रहसन की कथावस्तु स्वयं में अत्यंत परिष्कृत व सुष्ठु है। कथा के मध्य कहीं भी किसी भी प्रकार की अश्लीलता का सन्निवेश नहीं है। वस्तु योजना से ही सहज हास्य की उद्भावना होती है।

उक्त प्रहसन की ही भांति शृङ्गारनारदीयम् भी अत्यंत रोचक एवं उत्कृष्ट प्रहसन है। इसकी कथा का स्रोत देवीभागवत में वर्णित नारदकथा है। परन्तु इस कथा में कवि ने अपने कौशल से पर्याप्त उलटफेर करके उसको हास्योत्पादक बना दिया है। हास्योद्भावना का मूलाधार एक जलाशय है। इस जलाशय के जल का प्रभाव कुछ विशेष है। इसमें जो भी स्नान करता है उसका लिङ्ग परिवर्तन हो जाता है। स्त्री पुरुष बन जाता है और पुरुष स्त्री। ऐसी ही घटना के शिकार नारद जी भी हुए हैं।

एक बार नारद जी ब्रह्म लोक से कार्यवशात् यात्रा पर निकले वह हिमालय के रास्ते से जा रहे थे। श्रान्त नारद ने विश्राम का विचार बनाया। वह एक शिखर की कन्दरा की ओर बढ़ गए। कन्दरा के द्वार पर पहुँच कर जब वह भीतर दृष्टिपात किए तो रतिक्रिया में निमग्न गन्धर्व दम्पति लज्जा व बाधा के कारण उसमें से निकल भागा। नारद को अवरोध बनने की ठेस लगी। वह दुखी हुए। अपने को पाप का भागी मानते हुए उन्होंने जलाशय के तट पर अपनी वीणा रखकर पापप्रक्षालन हेतु उसमें स्नानार्थ प्रवेश किया और भरपूर स्नान किया। फिर क्या था? जलाशय के जल ने अपना चमत्कार दिखा ही दिया। फलतः नारद का लिङ्ग परिवर्तन हो गया। वह स्त्री बन गए।

इसी बीच जब नारद स्नान कर रहे थे तभी ऋक्षरजा आया। वह भी अत्यंत चमत्कारी था। इच्छानुसार वह जब चाहता पुरुष बन जाता और जब चाहता स्त्री। ऋक्षरजा बन्दरों जैसा था तथा कामी तो वह जन्मतः था। वह नारद की वीणा उठाकर बजा बजा कर नाचने लगा।

नारद ने वीणा की आवाज सुनी तो उन्होंने डुबकी लगाकर ऊपर देखा। उन्हें सामने ऋक्षरजा खड़ा मिला। नारद उसे देख कर क्रोधित हो उठे। ऋक्षरजा ने नारद को एक प्रणयी की भांति अत्यंत कामुक व ललचायी दृष्टि से देखा। उसके इस प्रकार के मुग्धदृष्टिपात से नारद को अपने स्त्री होने का कुछ भान हुआ। ऋक्षरजा ने अपना प्रणय प्रस्ताव जब नारद से रक्खा तो वह क्रोधित हो बोल उठे– 'जानते नहीं हो! मैं ब्रह्मा का पुत्र नारद हूँ'। ऋक्षरजा ने नारद से कहा– 'अब तुम नारद नहीं रदना हो। ब्रह्मा का पुत्र मैं हूँ। उन्होंने ही तुमको इस सरोवर में स्नान के उपरान्त मेरी पत्नी बनाया है'।

नारद ऋक्षरजा से दूर हटने का प्रयत्न करते और ऋक्षरजा था कि उनके पीछे ही पड़ गया। शनैः शनैः नारद के मन में उसके

प्रति प्रीति जगी। उनको पूर्णतः यह आभास हो गया कि मैं अब स्त्री हो गया हूँ। ऋक्षरजा ने नारद से प्रणयालाप किया। इस बीच जलाशय के मायावी रूप की आपबीती कथा ऋक्षरजा ने रदना (नारद) को सुनाया। रदना ने ऋक्षरजा की बतायी कथा का मनोवैज्ञानिक लाभ उठाने की बात मन ही मन ठान लिया। उसने ऋक्षरजा से कहा कि प्रणयी को पहले अपनी पत्नी को प्रसन्न करने हेतु शृंगारिक वस्तुयें उपलब्ध कराना चाहिए। तुम मुझे पहले अलंकरण हेतु जलाशय से कमल लाकर दो। ऋक्षरजा कमल हेतु जलाशय में उतर गया। फिर क्या था? फिर तो वही हुआ जो रदना चाहती थी। रदना ने इसी विचार से कमल लाने हेतु ऋक्षरजा से अनुनय भी किया था कि ज्यों ही वह जलाशय में घुसेगा स्वयमेव स्त्री बन जायेगा और मेरे प्रति उसका आकर्षण समाप्त हो जाएगा।

अब तो ऋक्षरजा के पास सिर धुनने के अतिरिक्त कोई उपचार ही न था। उसे अपनी मूर्खता पर बड़ा ही पश्चाताप हुआ। वह स्त्री बन गया।

रदना की कामना पूरी हो गयी। उसने व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ कहा बोलो सखी! – 'क्या है'। ऋक्षरजा ने झुंझलाकर उससे कहा कि यह सब तुम्हारी ही कूट-बुद्धि का परिणाम है। पुनः रदना ने उस पर तरह-तरह के तीखे व्यंग्यबाण छोड़े। फलतः ऋक्षरजा पलायमान हो उठी।

अब रदना ने वीणा बजा कर विष्णु को प्रसन्न किया तथा विष्णु जी प्रकट होकर रदना से बोले- 'शिव जी ने मुझे भी तो भोगार्थ स्त्री रूप में स्वीकार किया था। अतएव अब तुम मेरे संसर्ग से 60 पुत्र उत्पन्न करो फिर बाद में नारद बनना'। विष्णु ने ऋक्षरजा को पुरुष बनाने की भी बात कही परन्तु ऋक्षरजा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और उसने बदले में स्त्री ही बनी रहकर अपने क्रिया कलापों से संसार को नचाना व चकमा देना स्वीकार किया।

इतना होने पर भी सम्पूर्ण प्रहसन भोंड़ेपन से बिल्कुल अलग है। प्रहास्य दृश्यों की सुसंस्कृत कल्पना व योजना अत्यन्त रोचक है। संगीत का आयोजन प्रेक्षकों का भरपूर मनोरंजन करता है। नारद तथा ऋक्षरजा की लम्बी एकोक्तियाँ दर्शनीय हैं।

महालिङ्ग का उभयरूपकम् प्रहसन भी प्रचुर एकोक्तियों से युक्त है। यह प्रहसन भी इनके उक्त दोनों प्रहसनों की भांति ही अत्यन्त रोचक है व शिष्ट हास्य से संयुक्त है। इसमें कुक्कुटस्वामी के दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र का नाम छन्दोवृत्ति है। छोटे पुत्र को छागल कहते हैं। छागल इंग्लैंड में रह कर अध्ययन करता है। उसका पाश्चात्य सभ्यता के प्रति अत्यन्त लगाव है। कुक्कुटस्वामी भी अपने छोटे लड़के के प्रति ही ज्यादा वत्सलता प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि यह एक सुयोग्य बालक बनेगा। छागल को ग्रामीण जीवन बिल्कुल पसन्द नहीं है। अधिकांशतः वह अपने मामा के घर में ही रहा करता है साथ ही अत्यन्त आडम्बर पूर्ण जीवन जीने पर विश्वास करता है तथा तदनुसार ही अपने को नियोजित भी किए हुए है।

छागल की शादी किसी ग्राम्य बाला से तय होती है जो कि उसे पसन्द नहीं है। उसकी माँ पिप्पली ने कुक्कुट स्वामी की अनुपस्थिति में उसे बताया कि उसकी शादी वंचना से निश्चित कर दी गयी है। छागल ने इस निर्णय को अस्वीकृत कर दिया और स्पष्टतः कह दिया कि मुझे ग्रामीण जीवन पसन्द नहीं है। इसी बीच डाकिए ने आकर एक पत्र दिया। पत्र पाते ही छागल वापस जाने हेतु तैयारी करने लगा। छागल ने दाढ़ी बना कर कटे बाल को एक लिफाफे में रख दिया तथा फेंकना भूल गया। नौकर से सामान उठवाकर वह तैयार हो स्टेशन चला गया तथा किसी नाटक के संवाद का एक अंश भी वह कमरे में भूल गया। स्टेशन पहुँचकर उसने अपने पिता के लिए नौकर को एक पत्र दिया।

इधर कुक्कुट स्वामी खेत से जब घर आया तो छन्दोवृत्ति ने उसे बताया कि छागल ने आत्म हत्या कर ली तथा प्रमाण में उसने वही
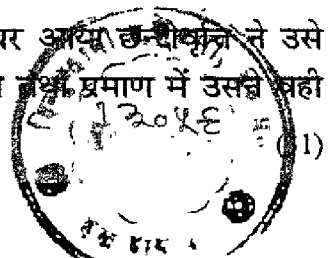
दाढी का बाल तथा सवाद का अश रख दिया दाढी के बाल मे ग्रामीण अध्यापक बज्रघोष ने तरह तरह के विषों का अनुमान लगाया। परिणामतः घर में रोना पीटना व कोहराम मच गया।

अन्त में जब स्टेशन से लौटकर नौकर ने छागल का पत्र दिया तो उसके जीवित होने का समाचार पुष्ट हुआ और सभी परिवार-जन प्रसन्न हो उठे। इस प्रकार नाटक की प्रारम्भ से अन्त तक की योजना अत्यन्त सौष्ठवपूर्ण व शिष्ट हास्य से युक्त है। नाटक के पात्रों का नामकरण ही हास्योत्पादक है। इसी से इसकी हास्य योजना का आरम्भ से ही आभास होने लगता है।

सन् 1931 में **वेङ्कटरामराघवन** ने विमुक्ति प्रहसन की रचना की। यह प्रहसन भी अपने ढंग का अनूठा व साहित्य में अद्वितीय स्थान अर्जित करने वाला है।

विमुक्ति प्रहसन दो अङ्कों का तथा पारलौकिक है। इसका वर्ण्यविषय मर्त्यलोक से ही जुड़ा है। सामाजिक पात्र होने के कारण प्रहसन का धरातल भी सामाजिक है। इसके सभी पात्र कवि की कल्पना में प्रतीकात्मक हैं। प्रहसन के प्रमुख पात्र आत्मनाथ जीवात्मा के प्रतीक माने गए हैं। आत्मनाथ के छः पुत्र हैं जो मन व पाँच इन्द्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मण आत्मनाथ की पत्नी का नाम त्रिवर्णी है। यह प्रकृति के रूप में उद्धृत है। त्रिवर्णी की माँ मायावती साक्षात् माया की प्रतीक है। तीनों गुणों सत्त्व, रज एवं तम की संकेतिका है। त्रिवर्णी की तीन भगिनियाँ हैं- चन्द्रिका, शोभिता एवं हस्तिनी। और ईश्वर के रूप में ग्रहण किया गया है वृद्ध को। राजा का साला दैष्ट्री है। यह राजा का सब कुछ है।

सांसारिकता में लिप्त मनुष्य का सजीव चरित्र इसमें चित्रित है। उसकी क्षणिक बुद्धि कैसे कैसे अपना रूप बदलती है दर्शनीय है। अभीप्सित की सिद्धि पर प्रसन्न होना, संघर्ष के क्षणों में झुंझलाना, कुपित होना व बिलखना। त्रिवर्णी के क्रिया कलाप नारियों की सहज मूर्खता के द्योतक हैं। अपनी इसी मूर्खता व मायावी लिप्सा के द्वारा

वह गृह कलह का बीज परिवार में बो देती है। इन स्त्रियों की आँखों में ईर्ष्या का आवरण कुछ इस प्रकार पड़ा होता है कि ये औचित्य व अनौचित्य का भेद ही नहीं कर पातीं। उनको सर्वत्र अनुचित ही अनुचित दीख पड़ता है। बस चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण ही सांसारिकता (माया) से मुक्ति देकर मनुष्य को सुखी बना सकता है। कवि ने अपने इसी भाव को प्रहसन में उतारा है। इसी कथावस्तु को कवि ने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह हास्योद्भावक बन गयी है। प्रहसन में दार्शनिक चिन्तन का सन्निवेश इसको अच्छी श्रेणी के प्रहसनों में खड़ा करता है।

सन् 1935 में व्यासराज शास्त्री ने सात अङ्कों का लीलाविलास प्रहसन रचा। अब तक प्राप्त प्रहसनों में यह सबसे अधिक अङ्को वाला है। ईस्वी सन् 1955 में रामनाथ मिश्र ने कर्मफल नामक प्रहसन में भारतीय समाज की विषमताओं को प्रकाशित किया है।

संविधान की दृष्टि से प्रहसन की प्रवृत्ति को नयी दिशा की ओर उन्मुख कर[23] जग्गू अलवारैय्यङ्गार ने सन् 1958 में अनङ्गदा प्रहसन की रचना की। इस प्रहसन की नायिका अनङ्गदा वेश्या है।

विष्णुपद भट्टाचार्य ने सन् 1959 ई0 में अनुकूल गलहस्त तथा मणिकाञ्चनसमन्वय नामक प्रहसन रचे। मणिकाञ्चन समन्वय अनूठा प्रहसन है। शृङ्गार विहीनता तथा स्त्री पात्रों के अभाव के फलस्वरूप भी हास्योत्पादन करना इस प्रहसन का वैशिष्ट्य है। प्रहसन साहित्य में यह प्रथम प्रहसन है जिसमें कि स्त्री पात्रों को स्थान नहीं दिया गया है।

क्षमाराव की पुत्री लीलाराव ने सन् 1955 से 1961 के मध्य कपोतालय प्रहसन की रचना करके प्रहसन साहित्य के इतिहास में प्रथम महिला प्रहसनकार के रूप में अपना स्थान बनाया।

सन् 1969 से 1974 के मध्य सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय ने धरित्रीपतिनिर्वाचन, अथ किम्, नाना विताडन तथा स्वर्गीय हसन नामक प्रहसनों की रचना की। प्रथम दो कृति हास्य व्यंग्यात्मक हैं।

ईस्वी सन् 1963 में पट्टाभिराम शास्त्री ने शिष्ट हास्य से युक्त नवोढ़ा वधू वरश्च प्रहसन की रचना की। प्रहसन मर्यादित हास्य से युक्त तथा अश्लीलता से अलग है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही गजेन्द्रशंकर लालशंकर पाण्ड्या ने कःश्रेयान् तथा श्री रामकुबेर मालवीय ने तीर्थयात्रा प्रहसन रचे। इन सभी प्रहसनों के कथानक एवं पात्रों की भूमिका से पर्याप्त हास्य उत्पन्न होता है।

उक्त प्रहसनों के अतिरिक्त रामनाथ शास्त्री ने दोला पंचीलक, बटुकनाथ शर्मा ने पण्डितताण्डव, मधुसूदन ने पण्डितचरित्त, माहेश्वर ने पाखण्डविडम्बन, अरुणनाथ गिरि ने योगानन्द, कांचनमाला ने मणिमंजूषा, सुन्दर देव वैद्य ने विनोद रंग तथा वासुदेव उपनाम गोविन्द श्रीवत्साङ्क ने सुभगानन्द प्रहसन की रचना की। ये सभी प्रहसन ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रहसनों की इस परिवर्धित होती शृंखला में सुन्दरराज के स्नुषाविजय, के.एल.वी. शास्त्री के लीलाविलास, चामुण्डा जी न्यायतीर्थ के क्षुत्क्षेम तथा के.नायर के अलब्धकर्मीयम् की गणना न करना बहुत बड़ी भूल कहलायेगी। अलब्धकर्मीयम् बेरोजगार युवकों पर एक अच्छा व्यंग्यात्मक प्रहार करता है। इन सभी प्रहसनों के अतिरिक्त लगभग 20 ऐसे प्रहसनों[24] का भी यत्र तत्र उल्लेख मिला है, जिनके लेखकों व लेखन काल का विवरण अप्राप्त है। प्रहसन साहित्य के इतिहास में इन सभी प्रहसनों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

---

1 शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः। नाट्यशास्त्रम्- 6/41, सं. पण्डित केदारनाथ, काव्यमाला-42, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी 1983. 2. शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः। वही- 6/40.

3 स्वादः काव्यार्थसम्भेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकासविस्तारक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः।। 43 ।।
शृंगारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात्।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि।। 44 ।। दशरूपकम्-चतुर्थप्रकाशः, सं.-डॉ. रमा शंकर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

4 अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् - वही-1/6. 5. पुरुरवा उर्वशी संवाद-ऋग्वेद-10/95, यम-यमी संवाद-ऋग्वेद 10/10, सरमापाणि संवाद-ऋग्वेद- 10/108, इन्द्राणी (वृषाकपि) संवाद-ऋग्वेद- 10/86. 6. History of Sanskrit Literature; Vol-I, Page-44; Dr. S. N. Dasgupta - 1947.

7. यजुर्वेद संहिता - 30/7 8. बाल्मीकि रामायण - 2/1/27, 2/3/17, 2/6/14, 2/67/15. 9. महाभारत और नाट्यशास्त्र-डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, जर्नल आफ जी. एन. झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, पार्ट 1-4, वाल्यूम XL 10. व्याकरण, महाभाष्य-111-26, पत‡लि, सं. कील हार्न। 11. संस्कृत में एकांकी रूपक -पृ.109, डॉ वीरबाला शर्मा; म. प्र. हिन्दी ग्रंथ एकेडमी, भूपाल। 12. वही-पृ. 119/120. 13. History of Indian Literature-page-331; M. winternitz. - 1977. 14. History of Sanskrit Literature, Page - 496; S.K. Dey. 15. संस्कृत साहित्य में एकांकी रूपक-पृ. 120/123, डॉ. वीरबाला शर्मा, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ एकेडमी, भूपाल। 16. प्रहसन परम्परा ओर बोधायन का भगवदज्जुकीयम्-भाग-2.। 17. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. 585, आचार्य बल्देव उपाध्याय। 18. अधुनिक संस्कृत नाटक- 1/23, डॉ. रामजी उपाध्याय।

19 सूत्राधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।। -दशरूपकम्-3/7-8

20. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विषकम्भ आदावंकस्य दर्शितः।।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।। -साहित्यदर्पणः-6/55-56

21 आधुनिक संस्कृत नाटक - अ. 57, डॉ. रामजी उपाध्याय। 22. वही- अध्याय-1/3. 23. वही-अ. 108,। 24. परिशिष्ट-1

अध्याय-3

प्रहसनकार बोधायन

देशकाल निर्णय एवं व्यक्ति परिचय

प्रहसनरत्नकार (बोधायन) की कृति की चर्चा तो विद्वानों के मध्य विगत कई वर्षों से है। इसकी विषय वस्तु की उत्कृष्टता ने लोगों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। परन्तु इसके कृतिकार के वैयक्तिक परिचय पर अभी तक कुछ विशेष चिन्तन नहीं हो पाने के कारण कृति विषयक चिन्तन कुछ अधूरा सा प्रतीत होना स्वाभाविक था। प्रस्तुत अध्याय में इस अधूरेपन को समाप्त कर कवि बोधायन के वैयक्तिक जीवन पर ही चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।

अ – भगवदज्जुकीयम् : कृतिकार निर्णय

भगवदज्जुकीयम् के कृतिकार के विषय में कई नामों का उल्लेख अभी तक प्राप्त हुआ है। कुछ लोग इसका कृतिकार आचार्य भरत को ही मानते हैं[1]। आचार्य भरत की रचना बताने वाले ऐसे समीक्षकों का नाम बहुत प्रयासों के पश्चात् भी प्राप्त नहीं हो सका। फिर भी यदि भगवदज्जुकीयम् वस्तुतः आचार्य भरत की ही कृति होती तो निश्चित रूप से उन्होंने इस कृति का नामोल्लेख नाट्यशास्त्र में कहीं न कहीं अवश्य ही किया होता, विशेषतया प्रहसन विभेद चर्चा में तो अवश्य ही इसका उल्लेख किया गया होता परन्तु ऐसा नहीं है। पुनश्च, यदि यह आचार्य भरत की कृति न भी होती और उनके समय में यदि उपलब्ध होती तो निश्चित ही इस कृति का नाम किसी न किसी सन्दर्भ के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र में आया होता, जैसे कि समुद्रमंथन व त्रिपुरदाह के नाम का उल्लेख आया है[2]। अतः प्रकृत प्रहसन आचार्य भरत प्रणीत तो नहीं ही है।

यह कृति अज्ञातनामा[3] लेखक की भी नहीं है क्योंकि इसकी अप्रकाशित टीका में[4] इसके कृतिकार का नाम बोधायन स्पष्ट रूप से अङ्कित है। यद्यपि कि इस नाम की चर्चा भगवदज्जुकीयम् प्रहसन में नाट्यशास्त्रीय विधानों के अनुकूल कहीं भी नहीं है। कृतिकार का नाम कृति में न होने से उसको कृतित्व से वंचित भी नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा सम्भव होता तो नाटक चक्रम् का कृतित्व भास को कैसे प्राप्त होता? पिशरोती महोदय ने भगवदज्जुकीयम् को संकलन मानकर इसे अज्ञात नामा लेखक की कृति बताया है[5]।

इस कृति को संकलन तो कदापि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संकलन में संकलित अंश को कहीं न कहीं तो उपलब्ध ही होना चाहिए, परन्तु इसमें कोई ऐसा अंश ही नहीं है जिसका कि संकलन किसी विशेष स्थान से किया गया प्रतीत होता हो। पिशरोती महोदय ने इसे संकलन तो कहा परन्तु यह स्पष्ट नहीं कर सके कि कवि ने कितना अंश कहाँ से संकलित किया है।

मत्तविलास प्रहसन के प्रणेता पल्लव नरेश महेन्द्र विक्रम वर्मा को 'भगवदज्जुकीयम्' का कृतिकार शायद इस आधार पर निरूपित किया गया है,[6] क्योंकि मत्तविलास प्रहसन के साथ उनके शिलालेख में भगवदज्जुकीयम् का नामोल्लेख है तथा इसका कुछ अंश भी शिलालेख में अक्षरशः अंकित है[7]। डॉ. राघवन की यह मान्यता निम्न आधारों पर पूर्णतः निस्सार सिद्ध होती है-

1. भगवदज्जुकीयम् प्रहसन यदि महेन्द्र विक्रम वर्मा की कृति होती तो उसमें भी वैसा ही शिल्प विधान होता जैसा कि मत्तविलास प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार तथा नटी की वार्ता में है, परन्तु इसमें सूत्रधार और विदूषक का वार्तालाप है। यह प्रक्रिया मत्तविलास प्रहसन की पद्धति से भिन्न है।

2. भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन- **अद्य सप्तमेऽहनि राजकुले तव प्रेक्षा भविष्यति**[8], एक ऐसा बिन्दु है जो चिन्तन को विशेष बल देता है। वस्तुतः सोचने की वस्तु है

कि एक राजा वह भी महेन्द्रविक्रम वर्मा जैसा पराक्रमी ऐसा क्यो कहेगा? उपर्युक्त कथन तो यह स्पष्ट करता है कि जैसे यह वाक्य किसी राज्याश्रित व्यक्ति के प्रति सम्बोधित किया गया हो। पुनश्च, वहीं पर यह भी कथित है कि त्वत्प्रयोगेन परितुष्टेन राज्ञा दत्तां महतीं श्रियमवाप्स्यतीति[9] यह कथन और भी इस बात की पुष्टि करता है कि भगवदज्जुकीयम् का कृतिकार किसी राजा के राज्याश्रित था और उसे राजा द्वारा समय समय पर पारितोषिक प्रदान किया जाता था उसके सद्प्रयोग के प्रति। महेन्द्रविक्रम वर्मा तो स्वयं ही राजा था तो फिर उसे राजकुल से पारितोषिक पाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

3. मत्तविलास प्रहसन में इसके कृतिकार का एवं इसको अभिनीत किए जाने का स्पष्ट उल्लेख है, परन्तु भगवदज्जुकीयम् प्रहसन में आद्योपान्त ऐसा कोई उल्लेख नहीं आया है। मात्र दशरूपकों में प्रहसन को प्रमुख[10] उद्घोषित कर इसके अभिनय का आदेश है।

4. भगवदज्जुकीयम् यदि पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रम वर्मा की ही कृति होती तो निश्चित रूप से मत्तविलास प्रहसन की ही भांति इसके आमुख में इनका नाम अथवा इनकी उपाधियाँ 'गुणभर'[11] अथवा 'शत्रुमल्ल'[12] आदि का उल्लेख अवश्य होता। अस्तु डॉ. वी. राघवन का यह मानना कि भगवदज्जुकीयम् पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रम वर्मा की कृति है, आधारहीन व तथ्य से परे है।

भगवदज्जुकीयम् को कवि भास के नाटकों के शिल्प विधान के समानान्तर होने के कारण भास की कृति कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि भास कालीन सामाजिक परिस्थितियों तथा भगवदज्जुकीयम् में चर्चित सामाजिक दशा में पर्याप्त अन्तर है। भास का समय 5वीं या 4थी शती वि0 पू0 है[13] तथा यह दक्षिण भारत के कवि हैं। दक्षिण भारत में भास के युग में बौद्ध धर्म का पराभव प्रारम्भ ही नहीं हुआ था। फाहियान के यात्रा प्रसङ्गों से यह ज्ञात होता है कि ईसा की 5वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उज्जैन, पाटलिपुत्र, तक्षशिला, वैशाली

तथा कन्नौज में बौद्ध धर्म की स्थिति सुदृढ़ थी जबकि दक्षिणभारत में बौद्ध धर्म के पराभव का प्रारम्भ हो रहा था[14]। इसी समय दक्षिण भारत में पाशुपत धर्म (शैवदर्शन) का विकास भी तेजी से हो रहा था। अतएव यह न तो भासकालीन कृति है और न ही भास की।

मद्रास नगर के एक पुस्तकालय[15] में भगवदज्जुकीयम् की अप्रकाशित टीका में निम्नलिखित श्लोक इसके कृतिकार पर प्रकाश डालता है-

बोधायनकविरचितं बोधायतनं विमुक्तशास्त्राणाम्।
प्रहसनरत्नं प्रत्नं भवतु मुदे भगवदज्जुकीयम् वः।।

इसी पुस्तकालय की एक अन्य अप्रकाशित टीका में-

बोधायनकविरचिते विख्याते भगवदज्जुकाभिहिते।
अभिनेयेऽतिगभीरे विशदानधुना करोमि ग्रन्थार्थान्।।

सुकुमार कवि रचित रघुवीरचरितम् में एक अन्य श्लोक-

यैर्बोधायनसूक्तिपुष्पकलिकाः कर्णावतंसीकृताः।
येषां बिल्हणसूक्तिमौक्तिकसराः कण्ठानलंकुर्वते[16]।।

उपर्युक्त सभी श्लोकों के आधार पर ही ऐसा प्रतीत होता है कि भगवदज्जुकीयम् प्रहसन के कृतिकार कवि बोधायन ही हैं।

अद्यतन प्राप्त अभिलेखों के अनुसार एक से अधिक बोधायन (बौधायन) के नामों का उल्लेख भिन्न भिन्न समयों में हुआ है। श्रौतसूत्र एवं धर्म-सूत्रकारों में गौतम, बोधायन (बौधायन), आपस्तम्ब तथा वशिष्ठ का नाम अग्रगण्य है। प्रथम बोधायन (बौधायन) श्रौतसूत्र तथा धर्मसूत्र के प्रणेता हैं। इनका समय लगभग 500 ई. पू. माना गया है[17]। बोधायन (बौधायन) तथा आपस्तंब दाक्षिणात्य थे[18]। इन बोधायन को भगवदज्जुकीयम् का कृतिकार निरूपित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह जिस युग के हैं, उस समय बौद्ध साहित्य का प्रादुर्भाव हो रहा था[19] साथ ही बौद्ध धर्म की स्थिति भी भारत में बहुत सुदृढ़ थी।

दूसरे बोधायन, ब्रह्मसूत्रवृत्ति के व्याख्याता हैं, जिनका उल्लेख श्री रामानुजाचार्य ने अपने श्रीभाष्य में किया है। इन बोधायन द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता तथा दश उपनिषदों की व्याख्या का ही उल्लेख प्राप्त हुआ है[20]। इनका समय भी कुछ निर्धारित नहीं है। अस्तु इन्हें भी भगवदज्जुकीयम् का कृतिकार स्वीकार नहीं किया जा सकता।

भगवदज्जुकीयम् के कृतिकार बोधायन के विषय में अपना अभिमत कुछ इस प्रकार का है-

ईसा की तीसरी व चौथी शताब्दी के मध्य, प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण तीन ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि पल्लवराजवंश के आदिपुरूष बप्पदेव ने दक्षिणभारत में कांची (काञ्जीवरम) और धान्यटक (धरणीकोट्टा) नामक दो राजधानियाँ कायम कर पल्लव साम्राज्य की स्थापना की थी[21]। बप्पदेव के बाद उसका पुत्र शिवस्कन्द वर्मन और फिर विष्णुगोपाल नामक शासक ने पल्लव राजगद्दी का स्वामित्व ग्रहण किया, जिसने समुद्रगुप्त को आत्म समर्पण किया था। इन राजाओं का समय ईसा की तीसरी से छठीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक है। छठवीं शताब्दी के अंतिम चरण में सिंहविष्णु वर्मन नामक प्रतापी सामन्त ने नया पल्लव वंश प्रतिष्ठित किया। सिंहविष्णु वर्मन के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रविक्रम वर्मन (महेन्द्रविक्रम वर्मा) प्रथम ने सप्तम शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में राजगद्दी का कार्यभार ग्रहण किया[22]। पल्लवों के लगभग 600 वर्षों के शासन काल में दक्षिण भारत धर्म, कला तथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत ही उन्नत था। संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ तथा तत्कालीन संस्कृतज्ञ पण्डितों के सत्कारार्थ पल्लव राजाओं के प्रयास इतिहास की अविस्मरणीय घटनायें हैं।

राजधानी बनाये जाने के पश्चात् राजाओं का काञ्ची के सर्वतोन्मुखी विकास पर ध्यानाकर्षण स्वाभाविक था। इस कारण काञ्ची की सुषमा स्वाभाविक रूप से कवियों के आकर्षण का केन्द्र बन गयी।

भगवदज्जुकीयम् के कवि को भी यह आकर्षित करने में असफल न रही[23]। पल्लवनरेश सिंहविष्णु वर्मा ने अपने राज्य में माघ कवि को आमंत्रित कर सम्मानित किया था[24]। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत प्रहसन इसी अवसर पर अभिनीत किया गया था और भगवदज्जुकीयम् के कृतिकार बोधायन, सिंहविष्णु वर्मा के राज्याश्रित दार्शनिक एवं संस्कृत के विद्वान् थे जो कि अध्यापन का कार्य किया करते थे। सिंहविष्णु वर्मा ने संस्कृत के विद्वानों को राज्याश्रय दे ही रक्खा था साथ ही विद्वानों को पर्याप्त सम्मान भी देते थे।

भगवदज्जुकीयम् के प्रणेता बोधायन ने अपने इसी आश्रयदाता के आदेश के अनुपालन में यह प्रहसन लिखा था न कि अपनी इच्छातृप्ति या आत्मप्रशस्ति हेतु, जैसा कि इस प्रहसन के आमुख से यह स्पष्ट होता है- **अद्य सप्तमेऽहनि तव राजकुले प्रेक्षा भविष्यति**[25] इति।

पल्लवनरेश सिंहविष्णु वर्मा का पुत्र महेन्द्रविक्रम वर्मा बोधायन की प्रतिभा से काफी प्रभावित था, इसी कारण उसने अपने शिलालेख में भगवदज्जुकीयम् को उत्कीर्ण किया[26]। इस शिलालेख से यह तो निश्चित ही है कि भगवदज्जुकीयम् तथा इसका कृतिकार बोधायन महेन्द्रविक्रम वर्मा हेतु एक आदर्श व प्रेरणा स्रोत था। अन्तर मात्र इतना है कि महेन्द्रविक्रम वर्मा महत्वाकांक्षी शासक था, इसीलिए उसने अपने मत्तविलास प्रहसन में आत्मप्रशस्ति हेतु **गुणभर व शत्रुमल्ल** आदि का प्रयोग किया है, ऐसी महत्वाकांक्षा बोधायन में न थी, क्योंकि वह एक गम्भीर दार्शनिक थे। उनको इससे कोई सरोकार न था।

भगवदज्जुकीयम् की कथावस्तु में **परकायप्रवेश** विषय के सन्निवेश में भी निम्न कारण प्रतीत होता है-

विन्ध्य के उत्तरी क्षेत्र में, प्रयाग में प्रतिष्ठान पुरी (आधुनिक झूंसी) है। यहाँ पर **नाथ सम्प्रदाय** के आदिगुरु मत्स्येन्द्रनाथ[27] ने महाराज त्रिविक्रम के मृत शरीर[28] में अपनी आत्मा को विनियोजित

किया था। गुरु मत्स्येन्द्र नाथ, गुरु शिष्य परंपरा में अभिनव गुप्त से 22 पीढ़ी पूर्व के हैं[29]। अभिनव गुप्त का समय ईस्वी की दशम शताब्दी के अन्तिम भाग से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी का प्रथम चरण है[30]। इस प्रकार गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के पराकाय प्रवेश की यह उद्दाम क्रिया तत्कालीन (पल्लवनरेश सिंहविष्णु वर्मा के समय) समाज में विशेष चर्चा का ज्वलंत विषय रही होगी। इसी समय दक्षिण भारत में पाशुपतदर्शन (शैव) का विकास भी हो रहा था। यह घटना योग के लिए विशिष्ट रूप से उदाहृत हो गयी। बोधायन विद्वान व दार्शनिक तो थे ही, उन्होंने इसी विषय को अपने कथानक का आधार ग्रहण कर लिया साथ ही यह घटना योग की शक्ति को प्रबल सिद्ध करने के लिए तथा बौद्ध विचारकों को हेय प्रदर्शित करने हेतु प्रत्यक्ष थी। इसी कारण इस घटना के अंश 'परकाय-प्रवेश' ने कृतिकार बोधायन को प्रेरणा दी, फलतः उसने अपनी चातुरी का जामा पहनाकर विषय को प्रहसनपूर्ण बना दिया। एक ओर कवि माघ के सत्कार का उत्सव तथा दूसरी ओर योग की शक्ति के महत्व को स्पष्ट करने हेतु 'परकाय-प्रवेश' की यह प्रेरणा साथ ही अपने दार्शनिक भावों के उद्वेलन का सुन्दर अवसर, यह सब कवि बोधायन के लिए एक मणिकाञ्चन संयोग की भांति उपलब्ध हुए से लगते हैं।

ब- बोधायन का काल निर्णय

बाह्य साक्ष्य : 1- भगवदज्जुकीयम् का सर्वप्रथम उल्लेख पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रम वर्मा के 610 ई0 के ममन्दूर के शिलालेख में हुआ है[31]। इस शिलालेख में भगवदज्जुकीयम् का निम्न अंश भी अंकित है-

शाण्डिल्यः 'सुणादु, भअवो। ....उत्तम्।
परिव्राजकः शाण्डिल्य! सांड्ख्य......शाक्यसमयः[32]।

2. भगवदज्जुकीयम् की मद्रास स्थित एक अप्रकाशित टीका के अन्त में भरतवाक्य में दो श्लोक हैं[33] जो कि निम्नवत् हैं-

शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः।।
बोधायनकविरचितं बोधायतनं विमुक्तशास्त्राणाम्।
प्रहसनरत्नं प्रत्नं भवतु मुदे भगवदज्जुकीयं वः।।

उक्त भरत वाक्य के दो श्लोकों में से प्रथम श्लोक 'शिवमस्तु सर्व....भवतु लोकः, अक्षरशः नागानन्द नाटक में भरतवाक्य के अन्तिम श्लोक के रूप में प्रयुक्त है[34]।

3. नाटकलक्षणरत्नकोष में प्रहसनों के रूप-विभाजन में सागरनन्दी[35] ने भगवदज्जुकीयम् को संकीर्ण प्रहसन के रूप में स्वीकार किया है-

संकीर्णं वेश्याविट नपुंसकादिभूषितम् प्रथमं शशिविलासादि द्वितीयं भगवदज्जुकादि[36]।

4. सुकुमार कवि[37] (स्थितिकाल 12वीं शताब्दी ईस्वी) की रघुवीर चरित में बोधायन की सूक्ति की श्रेष्ठता का बखान कुछ इस प्रकार से किया गया है-

यैर्बोधायनसूक्तिपुष्पकलिकाः कर्णावतंसीकृताः[38]

5. प्रहसन विभेद प्रसंङ्ग में सिङ्गभूपाल (स्थितिकाल 14वीं शताब्दी ईस्वी) ने भगवदज्जुकम् का उल्लेख करते हुए लिखा है[39]-

शुद्धं कीर्णं वैकृतं च तच्च प्रहसनं त्रिधा ।। 285 ।।
शुद्धं श्रोत्रियशोभादेर्वेषभाषादिसंयुतम् ।
चेटचेटीजनव्याप्तं (तत्) लक्ष्यं निरूप्यताम् ।। 286 ।।
आनन्दकोशप्रमुखं तथा भगवदज्जुकम् ।।

अन्तःसाक्ष्य : 'भगवदज्जुकीयम्' में अन्तःसाक्ष्य कुछ भी ऐसा नहीं प्राप्त होता, जिसके आधार पर इसके कृतिकार 'बोधायन' का काल निर्णय किया जा सके। डॉ. एम. विन्टरनिट्ज ने नाटक ...रणोद्भवासुवारेहामृगाडिमसमवकारव्यायोगभाणसंल्लापः - वीथ्युत्सृष्टिकांक[40] में प्रयुक्त वार तथा संलापक को रूपक की दो

अतिरिक्त विधाओं के रूप में निरूपित करके बोधायन को अत्यधिक प्राचीनता प्रदान की है।

प्रो. एम. विन्टरनिट्ज ने ब्रह्मसूत्रकार 'बादरायण' के ऊपर ही 'भगवदज्जुकीयम्' के कृतिकार होने का अभिमत दिया है[41] परन्तु उनकी यह मान्यता पुष्ट आधार से विहीन है। मात्र एक आभास है। हाँ! कृति से इतना आभास अवश्य लगता है कि यह उस युग की रचना है, जब भारत में बौद्ध धर्म का पराभव प्रारम्भ हो गया था। लोगों में तन्त्र-मन्त्र के प्रति पर्याप्त आस्था थी तथा शैव धर्म शनैः शनैः प्रभावशाली हो रहा था।

पूर्वापर निर्धारण :

'भगवदज्जुकीयम्' के कृतिकार 'बोधायन' के पूर्वापर समय-निर्धारण में जहाँ बाह्यसाक्ष्य का पर्याप्त योगदान है वहीं अन्तःसाक्ष्य मूक है। पूर्व पूर्व क्रम में 'भगवदज्जुकीयम्' के संवाद के साथ प्रथमतः इसका उल्लेख पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रम वर्मा के (610 ई0) ममन्दूर शिलालेख में हुआ है। इसके पश्चात् श्री हर्षवर्धन के 'नागानन्दम्' नाटक में 'भगवदज्जुकीयम्' के भरत-वाक्य का एक श्लोक उद्धृत किया जाना यह स्पष्ट करता है कि 'भगवदज्जुकीयम्' के कृतिकार बोधायन का समय निश्चित ही महेन्द्रविक्रम वर्मा तथा श्री हर्षवर्धन के पूर्व का होना चाहिए। पश्चात् का नहीं। डॉ. वीरबाला शर्मा के अनुसार 'भगवदज्जुकीयम् तथा मत्तविलास कालीन सामाजिक दशा का चित्रण यह स्पष्ट करता है कि भगवदज्जुकीयम्, मत्तविलास से पहले की रचना है[42]।

डॉ. रामजी उपाध्याय ने 'भगवदज्जुकीयम्' पर शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' का प्रभाव निम्नरूपेण निरूपित किया है[43] जो कि दोनों ही कृतियों के अध्ययन से वस्तुतः खरा उतरता है।

दोनों ही कृतियों में गणिकाओं का नाम वसन्तसेना है।

इन दोनों की ही वसन्तसेना उद्यान में अपने प्रियतम के साथ विहार करने जाती हैं।

दोनों ही नायिकाओं की कुछ समय के लिए मृत्यु हो जाती है।

दोनों नायिकाओं का जीवन दान परिव्राजक करते हैं।

सारे टण्टो के पश्चात नायक और नायिका मिल जाते हैं।

बौद्धधर्म के पराभव का इतिहास भी इसकी मंत्रयान तथा वज्रयान उपशाखाओं के प्रादुर्भाव के साथ ही प्रारम्भ होता है। 5वीं शताब्दी ईस्वी से 10वीं शताब्दी तक का यह समय भारत में हिन्दुत्व तथा स्वतः बौद्ध धर्म के लिए घातक सिद्ध हुआ। मन तथा इन्द्रियों की सहज एवं स्वाभाविक गति से सिक्त विचार प्रणाली की सहजयान उपशाखा ने तो बौद्धधर्म को गर्त में ढकेल कर रख दिया।

बौद्धन्याय की योगाचार से युक्त विज्ञानवादी शाखा (5वीं से 10वीं शताब्दी ई.) में बौद्ध तत्त्वज्ञान की अपेक्षा बौद्धधर्म की ओर लोगों की अत्यधिक रुचि थी। यह युग तन्त्र–मन्त्र तथा योगाचार के आधिपत्य का युग था[44]। प्रकृत प्रहसन में वैद्य द्वारा सर्पदंश के अवसर पर तन्त्र–मन्त्र के प्रयोग को महत्त्व[45] देना यह स्पष्ट करता है कि उस युग का प्रभाव इस कृति पर पर्याप्त है।

मृच्छकटिकम् के कृतिकार 'शूद्रक' का समय 5वीं शताब्दी ई. स्वीकार किया गया है[46]। इसके पात्रों तथा कथानक का प्रभाव भगवदज्जुकीयम् पर है, अस्तु बोधायन को ईसा की 5वीं शताब्दी के पश्चात का होना चाहिए। पुनश्च महेन्द्रविक्रम वर्मा के ममन्दूर शिलालेख में भगवदज्जुकीयम् के अंश का उल्लेख तथा भगवदज्जुकीयम् युगीन सामाजिक स्थिति बोधायन तथा उनकी कृति को मत्तविलास प्रहसन का पूर्ववर्ती स्पष्ट करती है। पल्लव नरेश महेन्द्रविक्रम वर्मा का समय सातवीं शताब्दी ई0 का प्रथम चरण है[47]। अस्तु भगवदज्जुकीयम् के कृतिकार बोधायन का समय उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निश्चित रूप से 6वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रतीत ही होता है।

डॉ. डे. का मत है कि भगवदज्जुकीयम् की रचना लटक मेलक से पूर्व में हुयी है[48]।

वाचस्पति गैरोला भगवदज्जुकीयम् की रचना ईसा की प्रथम दो शताब्दी के मध्य मानते हैं[49]।

कृष्णमचारी इसका रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी या उससे पूर्व का मानते हैं[50]। साथ ही उनका यह भी कथन है कि यह ईसा की चतुर्थ शताब्दी के पश्चात् की कदापि नहीं हो सकती[51]।

(स) बोधायन का स्थान निर्णय :

भगवदज्जुकीयम् के कृतिकार 'बोधायन' मूलतः कहाँ के निवासी थे, इस विषय में कुछ स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो पाता। कृति से यह अनुमान अवश्य लगता है कि बोधायन ने जिस समय इसका प्रणयन किया था, वह दक्षिण भारत में निवास कर रहे थे, क्योंकि इस प्रहसन में विवक्षित सामाजिक परिस्थितियां व विशेष खान पान[52] 'ओदनादि' के प्रति शाण्डिल्य की रुचि दक्षिण भारतीय संस्कृति के विशेष समीप है। यही नहीं यमपुरी के मार्ग निर्देश में कवि ने विन्ध्य से दक्षिण जाते हुए नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा नदी को पार कर पशुपति भवन व कांची नगरी (कञ्जीवरम्) के पार कावेरी, ताम्रपर्णी व मलयगिरि पर्वत से भी दूर दक्षिण में सागर को लांघ कर लङ्का के और दक्षिण यमपुरी अथवा धर्मदेश[53] की भौगोलिक सीमा को चित्रांकित किया है। कवि की यह मानसिकता ऐसा कुछ स्पष्ट करती है कि उसे भारत की सीमा से लगे सागर के उस पार उत्तरोत्तर दाक्षिणात्य संस्कृति अच्छी नहीं लगी थी। यद्यपि धर्मशास्त्र मे निर्दिष्ट दक्षिणदिशा यमपुरी के रूप में प्रसिद्ध है तथापि यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य भी है कि कोई भी व्यक्ति अपने निवास स्थान को यमपुरी के रूप में निरूपित नहीं करना चाहता। कवि बोधायन भी यमपुरी की सीमा को बताते समय गंगापार कर विन्ध्य के दक्षिण से ही उसका निर्देश करते हैं। यह गंगा के और उत्तर से ही उसकी सीमा क्यों नहीं शुरू किए यह तथ्य उनके निवास स्थान के विषय में सन्देह अवश्य उत्पन्न करता है। इससे यह अवश्य आभास होता है कि कवि को उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत की तत्कालीन

सभ्यता मे पर्याप्त अन्तर प्राप्त हुआ था और उसने इन क्षेत्रो के भ्रमण से विशेष अनुभव अर्जित किया था।

नामकरण की पद्धति का अनुकरण कर बोधायन को दाक्षिणात्य भी निरूपित नहीं किया जा सकता। क्योंकि नामकरण की यह शैली उत्तराखण्ड (बादरायण) व कश्मीर (चारायणी शाखा[54], चारायणी शिक्षा के प्रवक्ता व रचयिता[55], भारतवर्ष से कूचा जाने वाले कुमारायण)[56] में भी विद्यमान थी। भगवदज्जुकीयम् के वर्णन[57] के आधार पर तो यह विन्ध्य के उत्तर प्रान्त के प्रतीत होते हैं जो कि दक्षिण भारत में पल्लवनरेश सिंहविष्णु वर्मा का राज्याश्रय ग्रहण कर जीवन का अधिकांश समय दक्षिण भारत में ही व्यतीत किए थे। के. कुञ्जुनी राजा की व्याख्या भी परोक्ष रूप से बोधायन को मूलतः केरल प्रदेश का स्वीकार नहीं करती है[58]।

(द) बोधायन का वैयक्तिक परिचय :

भगवदज्जुकीयम् के कवि बोधायन वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से किस वर्ण के सदस्य थे, इसका भी कुछ उल्लेख प्राप्त नहीं होता। हाँ! इतना तो अवश्य ही है कि वे दार्शनिक विचारों से पूर्णतया ओतप्रोत थे। वे सांख्य तथा योग के प्रकाण्ड पण्डित थे[59]। कवि ने प्रचलित उपासना पद्धतियों में योग के मार्ग को अत्यन्त प्रशस्त एवं महत्तम निरूपित किया है-

> **अवार्यमक्षोभ्यमचिन्त्यमव्ययं,**
> **महन्महा योगफलं निषेव्यते[60]।।**

कवि ने योग को रागद्वेष रहित तथा द्वन्द्वों का नाश करने वाला एवं तत्त्वस्थ कहा है। इस प्रकार कवि की दृष्टि में योग का मार्ग एक अनोखा मार्ग है-

> **ज्ञानमूलं तपस्सारं तत्त्वस्थं द्वन्द्वनाशनम्।**
> **मुक्तं द्वेषाच्च रागाच्च योग इत्यभिधीयते[61]।।**

कवि की दृष्टि में प्रमाणों का विशेष महत्त्व है-

प्रमाण कुरु यल्लोके .... बुधै.।
नाप्रमाणं प्रमाणस्था करिष्यन्तीति निश्चयः[62]।।

कवि ने ज्ञान, विज्ञान संयम तथा तप से उत्पन्न योग की प्रवृत्ति को त्रिकालज्ञ निरूपित किया है–

'ज्ञानाद्भवति विज्ञानं, विज्ञानात्संयमः, संयमात्तपः तपसो योगप्रवृत्तिः, योगप्रवृत्तेरतीतानागतवर्तमानतत्त्वदर्शनं भवति[63] एतेभ्योऽष्टगुणमैश्वर्यं लभते[64]।

कवि बोधायन सांख्य सिद्धान्तो के भी प्रकाण्ड विद्वान थे–

अष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराः आत्मा पञ्च वायवः त्रैगुण्यं मनःसंचरः प्रतिसंचरश्चेति[65]

कवि के इतने सूक्ष्म निरूपण में सांख्य दर्शन की सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया[66] की रूपरेखा समाहित है। सञ्चरः तथा प्रतिसञ्चरः शब्द कपिल मुनि के तत्त्वसमास[67] के पारिभाषिक शब्द हैं। सांख्य– षडध्यायी और 'तत्त्वसमास' दोनों ग्रन्थों को मिलाकर ही सांख्य सूत्रों की पूर्ति होती है। तत्त्वसमास ईश्वरकृष्ण की सांख्य कारिका से पूर्व की रचना है[68]। कवि को इस पर तथा सांख्य सूत्रों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाण्डित्य प्राप्त था।

कवि बोधायन का नाट्यशास्त्रीय ज्ञान कुछ कम गूढ़ न था –

अथ तु नाटकप्रकरणोद्भवासु वारेहामृगडिमसमवकारव्यायो – गसंलापकवीथ्युत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनादिषु दशजातिषु[69]।

नाट्यशास्त्र में भी रूपक के उक्त दश भेद ही निरूपित किए गए हैं[70]।

अच्छे तथा बुरे कर्मों का फल सभी प्राणियों को भोगना पड़ता है। बोधायन भी इस विचारधारा के समर्थक थे–

स्वकर्म भोक्तुं जायन्ते प्रायेणैव हि जन्तवः।
क्षीणे कर्मणि चान्यत्र पुनर्गच्छन्ति देहिनः[71]।।

बोधायन सुख व दुःख तथा भय और हर्ष[72] की परिस्थितियों में समान आचरण के समर्थक हैं-

सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां
भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्[73]।।

कवि बोधायन दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत हैं। आत्मा की नित्यता के विषय में वह श्रीमद्भगवद्गीता[74] से पूर्णतः प्रभावित हैं-

योऽजरः अमरः अच्छेद्यः अभेद्यः स आत्मा नाम[75]।

एवंविध बोधायन न केवल दार्शनिक अपि तु विद्वान्, साहित्यिक व चरित्रवान व्यक्ति थे। कण्ठप्रसक्तयज्ञोपवीते ब्राह्मण्यमात्रपरितुष्टे कुले प्रसूतः[76] से ऐसा प्रतीत होता है कि ये ब्राह्मण वर्ण के थे।

---

1. भगवदज्जुकीयम्-पृ03, देवभाषाप्रकाशनम्, प्रयाग-1979; सं. डॉ.प्रभातशास्त्री। 2. नाट्यशास्त्रम्- अध्याय 4/10. 3. Pisharoti, l.c., p. 40, भगवदज्जुकीयम्-प्रोफेस, एम विंटरनिट्ज; सं. पी. अनुजन् अचन). 4. भगवदज्जुकीयम् की अप्रकाशित टीका, पालियाम लाइब्रेरी, जयन्तमङ्गलम्। 5. Pisharoti, l.c., p. 40. 6.वाई महालिङ्गशास्त्रिणा विरचितं- शृंगारनारदीयम् प्रहसनम्, प्रोफेस डॉ0वी0राघवन। 7. History of classical Sanskrit Literature: Para589; M. Krishnamchariar - 1937 A.D. 8. भगवदज्जुकीयम्-पृ0 4, सं0 पी0अनुजन् अचन। 9. वही। 10. वही - पृ0 5. 11. गुणभरमत्तविलासप्रहसणं-मत्तविलास प्रहसनम्, पृ0 2. 12. शक्तिप्रशमितरिपुणा शत्रुमल्लेन लोकः- वही पृ0 40. 13. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 491, आ0ब0उपाध्याय। 14. "Beginning of the Decline of Buddhism in India". Studies in the Buddhistic culture of India by Laxman Joshi Motilal Banarsidas, Varanasi-1987. 15. पालियाम पुस्तकालय, जयन्तमङ्गलम्-मद्रास 16 भगवदज्जुकीयम्-पृ. 5, देवभाषाप्रकाशनम् प्रयाग, सं0 डॉ0प्रभात शास्त्री। 17. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर- वी0वरदाचार्य। अनुवादक डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी- पृ0 45 व 79 (1956) 18. उपाध्याय ईश्वरी प्रसाद-प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला। 19. संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृ0 184, वाचस्पति गैरोला। 20. Catalogus catalogorum - Part I, Page 377: By Theodor Aufrecht - 1962. 21. गोपालन-हिस्ट्री आफ दी पल्लवाज़ आफ कांची, पृ0 32 (संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला पृ. 597; 1975) 22. वही।

23 गङ्गामुत्तीर्य विन्ध्यं शुभसलिलवहां नर्मदामेव सह्यम्
गोलेयीं कृष्णवेल्लां पशुपतिभवनं सुप्रयोगां च काञ्चीम्।

काबेरीं ताम्रपर्णीमथ मलयगिरिं सागरं लङ्घयित्वा,
वेगादुत्तीर्य लटां पवनसमगतिः प्राप्तवान्धर्मदेशम्।।25।।

–भगवदज्जुकीयम्

24. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 598; वाचस्पति गैरोला। 25. भगवदज्जुकीय प्रहसनम् – आमुख 26. Literary history of Sanskrit Literature ; M. Krishnam Chariar. 27. अखण्डज्योतिपत्रिका, पृ0 39,अखण्ड ज्योतिसंस्थान मथुरा–दिसम्बर, 1981. 28. ज्योतिषमार्तण्ड पत्रिका–पृ084, अंक–जनवरी 85, वापूनगर, जयपुर, (राज0)। 29. महाकाल संहिता –प्रथमखण्ड भूमिका, सं. डॉ. किशोरनाथ झा, गगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग। 30. काव्यप्रकाश भूमिका पृ0 51, टीकाकार सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य विश्वेश्वर। 31. History of classical Sanskrit Literature Para -589; M. Krishnam chariar 1937 A.D. 32.भगवदज्जुकीयं प्रहसनम्–पृ0 50–51, सं0 पी0 अनुचन् अचन–1925. 33. वही – पृ. 97. 34. श्री हर्षप्रणीत नागानन्दम् अंक–5, श्लोक–41, सं0 हरिवंशलाल लूथड़ा, 1958ई0। 35. सागरनन्दी का स्थिति काल– 11वीं शताब्दी ईस्वी है– काव्यप्रकाश; भूमिका पृ0 76, टीकाकार सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य विश्वेश्वर 36. नाटकलक्षणरत्नकोष – सागरनन्दी। 37 History of classical sanskrit Literature Para 589, M. Krishnam chariar - 1937 AD 38 भगवदज्जुकम्, पृ05; सं0 डॉ0 प्रभातशास्त्री, देवभाषा प्रकाशनम्, प्रयाग, 1979 ई0। 39. नाटकपरिभाषा–सिंगभूपाल–पृ0 23/24, सं0 कालीकुमारदत्ता, 1967 ई0। 40 भगवदज्जुकीयम् पृ0 4–5, सं0 पी0 अनुजन् अचन। 41. वही, प्रीफेस। 42 सस्कृत में एकांकी रूपक पृ. 144/145, डॉ. वीरबाला शर्मा। 43. मध्यकालीन सस्कृत नाटक, अध्याय–12, पृ0 143; डॉ. रामजी उपाध्याय। 44. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 401–402; वाचस्पति गैरोला। 45. भगवदज्जुकीयम्, पृ. 83–84, पी0 अनुजन् अचन। 46. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. 515, आचार्य बल्देव उपाध्याय। 47. प्राचीन भारत का इतिहास– पृ. 283, डॉ0 विमलचन्द्र पाण्डेय। 48 History of Snskrit Literature - Dey & Das gupta. 49. संस्कृत साहित्य का इतिहास–पृ 822, वाचस्पति गैरोला। 50. History of Sanskrit Literature, Para 589. M. Krishnamchariar 51 वही। 52. 'बोधायन युगीन समाज'–प्रस्तुत ग्रंथ भाग–1, अध्याय–4. 53. भगवदज्जुकीयम्–श्लोक–25. 54. वैदिक वाङ्मय का इतिहास–पं0 भगवद्दत्त। 55 इण्डियन एन्टीक्वैरी, जुलाई–1876; डॉ0 कीलहार्न। 56. विश्व सभ्यता का इतिहास पृ0 330; उदय नारायण राय। 57. गङ्गामुत्तीर्य विन्ध्यं शुभसलिलवहां – श्लोक 25 58 Contribution of Kerala to Sanskrit Literature Page 148; University Publication Madras - 1980. 59. मध्यकालीन संस्कृत नाटक, अध्याय–12; डॉ0 रामजी उपाध्याय। 60. भगवदज्जुकम् पृ0 16, देवभाषा प्रकाशनम् प्रयाग। 61. वही। 62. वही पृ –15. 63.वही– पृ. 15. 64. अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व ईशितृत्व तथा यत्रकामावसायित्व आदि योगिक सिद्धियाँ। 65. भगवदज्जुकम् पृ. 17, देवभाषा प्रकाशनम् प्रयाग। 66. सांख्यकारिका–(कारिका 1 से 27), ईश्वरकृष्ण। 67 सस्कृत साहित्य का इतिहास–पृ. 468; वाचस्पति गैरोला। 68. सिक्स सिस्टम आफ

इंडियन फिलासफी – पृ. 294, मैक्समूलर। 69. भगवदज्जुकम् – पृ.–7; देवभाषा प्रकाशनम्, प्रयाग ।

70. नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।

–नाट्यशास्त्रम्–20/2,3.

71. भगवदज्जुकम् पृ.–21, श्लोक 24; देवभाषा प्रकाशनम्, प्रयाग। 72. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/38,56. 73. भगवदज्जुकम्– पृ.–11, श्लोक–7.

74. अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

–श्रीमद्भागवद्गीता–2/24.

75. भगवदज्जुकम् पृ0–12. देवभाषा प्रकाशनम्, प्रयाग। 76. वही पृष्ठ–9

अध्याय -4

बोधायन युगीन समाज

अत्यन्त विश्रुतबात की बार-बार पुनरावृत्ति कि साहित्य समाज का दर्पण होता है कुछ विलक्षण न होगी। आज का वर्तमान कल अतीत की संज्ञा से अभिहित होगा। आज का सत्य कल अतीत का अंगा धारण कर इतिहास गढ़ेगा। यही तो है न इतिहास! अतीत का सत्य।

इतिहास शाश्वत घटनाओं का क्रमबद्ध अभिलेख है। ये सभी घटनायें देश, समाज तथा उसकी राजनीतिक परिस्थितियों से बाहर तो होंगी नहीं। और साहित्य? साहित्य इन्हीं के चित्र को अपने कैनवस में उभारता है, उतारता है। थोड़ा फर्क होता है इतिहास एवं साहित्य में। इतिहास को देश तथा समाज से जुडी परिस्थितियों का नग्न चित्र कहा जाय तो संभवतः अत्युक्ति न होगी। और साहित्य? साहित्यकार इन चित्रों पर जब लालित्य का आवरण चढ़ाकर, प्रस्तुत कर देता है तब यह साहित्य की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। शायद इसीलिए इतिहासकार सामयिक साहित्य के मंथन के बिना आगे नहीं बढ़ पाता। उसको जब कुछ नहीं मिल पाता तब वह साहित्य-सागर में गोता लगाकर कुछ पाने का प्रयास करता है, और पाता है। कारण यह कि देश और समाज के विभिन्न प्रकार के परिवर्तनशील आयाम साहित्यकारों की आत्मा को तत्काल ही झकझोर कर रख देते हैं। और वह इनका चित्र खींचे बिना फिर रह नहीं पाता। उसकी यह अभिव्यक्ति ही इन आयामों के प्रति एक प्रतिक्रया होती है। दलाल भला कब किसका सगा होता है? साहित्यकार के हाथ में टिका उसका स्याही का दलाल भी फिर ऐसी परिवर्तनशील परिस्थितियों का बयान कुछ चटपटा बनाकर कह डालता है। उसके बयानों में निहित ये परिस्थितियाँ ही समाज का चित्र होती है। उसका इतिहास गढ़ने में सहायक होती हैं। हाँ!

साहित्यकार समाज में व्याप्त कुरीतियों का चित्रांकन तो करता ही है साथ ही उन कुरीतियों के दलन का उपाय भी प्रस्तुत करता है। जो कि इतिहासकार नहीं करता। बस यही साहित्यकार और इतिहासकार में अन्तर है।

आइये देखते हैं भगवदज्जुकीयम् के कवि बोधायन ने अपनी कृति में तत्कालीन समाज का चित्र गढ़ने में कितनी सफलता प्राप्त की है।

भगवदज्जुकीयम् एक रूपक है और रूपक ? -

Drama[1] is a copy of life, a mirror of custums and a reflection of truth- cicero.

रूपक मात्र रूपक न होकर मानव जीवन व उसके सामाजिक क्रियाकलापों का चिरंतन सत्य होता है। रूपकों के द्वारा मनुष्य का मनोरंजन तो होता ही है साथ ही मानव समाज में व्याप्त बहुविध सांस्कृतिक विपर्यय का खुला चिट्ठा भी होता है, जो कि मनुष्यों के द्वारा अभिनीत होकर उसको समाज में व्याप्त विषमताओं के प्रति जागृत करता है। रूपकों की व्यंग्यात्मक शैली सामाजिकों में समाज को परिष्कृत करने के भाव को उद्वेलित करती है। भावों का यह सिलसिला तभी प्रारम्भ होता है जब कि उसकी आँखों के समक्ष लगे पर्दे का अनावरण रूपकों के माध्यम से होता है। उसको अपनी व समाज की वास्तविक आधारशिला के खोखलेपन का ज्ञान रूपकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी माध्यम से उतना सन्तोषजनक नहीं हो पाता, क्योंकि रूपकों का स्वरूप ही कुछ ऐसा है-

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतत्---------।।

नाट्यशास्त्रम्- 1/112

इस तरह रस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरत के अनुसार 'रूपक लोकवृत्त का अनुकरण है'। स्वाभाविक है- लोकवृत्त का अनुकरण होने के कारण तत्कालीन समाज का चित्र, कोई भी रूपक हो बिना प्रस्तुत किए नहीं रह सकता। रूपकों के इस फल

का श्रेय मर्मस्पर्शी साहित्यकारों को है, जो हास्य के विशिष्ट समायोजन द्वारा समाज में बुराई का प्रचार करने वाले व्यक्तियों की मीठी चुटकी भी लेते हैं और अपने अभीष्ट की सिद्धि भी कर लेते हैं।[2]

प्रकृत रूपक भगवदज्जुकीयम् प्रहसन में कवि बोधायन भी तत्कालीन लोकवृत्त का चित्र खींचने से बाज नहीं आया। प्रहसन की प्रस्तावना (आमुख) में ही नाट्यरसेषु हास्यमेव प्रधानम्[3] इस प्रकार सूत्रधार का यह वाक्य इस तथ्य को प्रतिभासित करता है कि तत्कालीन समाज में हास्यप्रधान रूपकों (प्रहसनों) का प्रचलन पर्याप्त था तथा इस प्रकार के रूपकों को विशेष सम्मान दिया जाता था। प्रधान माने जाने के कारण ही प्रहसन के अभिनय को सूत्रधार ने वरीयता प्रदान की है। यह प्रवृत्ति इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि लोग मनोरञ्जनात्मक अभिव्यक्तियों में विशेष रुचि लिया करते थे। लोगों का इस प्रकार रुचि लेना तभी संभव होता है जब कि उन्हें दैनिक जीवन की समस्याओं से जूझने की चिन्ता न हो; कारण यह कि जो समाज जीवन की मूल–भूत समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त होगा, उसको हंसी के गुलछर्रे उड़ाने का अवकाश न होगा। बोधायन ने ऐसे ही समाज को चित्रित किया है, जो कि उस समय हर्षोल्लास के वातरण में रंगा हुआ था। **नित्योत्सवविशेषे सुख प्रधाने**[4] शाण्डिल्य का यह कथन तत्कालीन भारत की समृद्धशाली स्थिति को पुष्ट करता है। उसका यह कथन जहाँ एक ओर भारत की वैभवपूर्ण सामाजिकता का बयान करता है वहीं **दास्याः पुत्राणां**[5] यह भी कहने से नहीं चूकता कि उस समय समाज में धनाढ्यों द्वारा दास भी बनाये जाते थे या दास प्रथा विद्यमान थी, जो कि सम्प्रभुता सम्पन्न इस वर्ग को ललचायी हुयी आँखों से देखा करती थी।

तव राजकुले प्रेक्षा भविष्यति[6] तथा **परितुष्टेन राज्ञा दत्तां महतीं श्रियम्**[7] यह व्यक्त करता है कि राजदरबार में राजा लोग मनोरंजनार्थ रूपकों का आयोजन कराते थे तथा अभिनय की

सफलता पर कृतिकार व अभिनेता को पारितोषिक भी दिया करते थे।

एकोऽहं अन्नहतत्त्वेन
यतिं प्रविष्टो न तु धर्मलोभात्[8]।।

शाण्डिल्य का उक्त कथन यह स्पष्ट करता है कि बौद्ध मतावलम्बी भिक्षुओं का विश्वास धीरे-धीरे उसके नियम संयम से उठना प्रारम्भ हो गया था और वह बौद्ध विहार से पलायन करना शुरू कर दिये थे। विहार में नियम के प्रति उनमें उदासीनता आती जा रही थी तथा वह व्रत उपवास करके तपस्या करने व ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा क्षुधाशान्ति के उपाय ढूँढने के प्रयास में लग गये थे। शाण्डिल्य मात्र पेट भरने की चिन्ता के कारण धर्म परिवर्तित कर सन्यासी का शरणागत हुआ था उसको सन्यासी के धर्म से भी कुछ लेना देना नहीं था अन्यथा वह सन्यासी द्वारा दी जा रही योग की दीक्षा का तन्मयता से मनन करता, परन्तु वह तो निरन्तर एक ही बात दोहराता है-

प्रथममहं प्रातरशनलोभेन शाक्यश्रमणकं प्रव्रजितोऽस्मि[9]।

तत्कालीन समाज में शाक्य श्रमणकों व उनके बिहारों में व्यभिचारवृत्ति का प्रवेश[10] हो चुका था लेकिन यह वृत्ति उस काल में अपनी पराकाष्ठा पर रही हो ऐसा कहा जाना समीचीन नहीं है।

भोजन के चिन्तन में शाण्डिल्य द्वारा चावल या भात के प्रति स्थान-स्थान पर रुचि व्यक्त[11] किया जाना तत्कालीन समाज व देश में चावल या भात के प्रति सामान्य लोकप्रियता व्यक्त करता है। शाण्डिल्य को भोजन में भात के अतिरिक्त और कुछ भी प्रिय नहीं है और न ही उसने अन्य किसी प्रकार के भोजन की चर्चा ही की है।

सर्पदंश द्वारा मूर्च्छित गणिका का मंत्रोपचार[12] द्वारा स्वस्थ किए जाने का प्रयास तत्कालीन समाज की तंत्र मंत्र विद्या के ऊपर आस्था प्रकट करता है। वैद्यों के द्वारा शल्योपचार भी तत्कालीन समाज में विद्यमान था।

अंततोगत्वा प्रकृत प्रहसन में उक्त तथ्य तत्कालीन समाज की निम्न प्रमुख प्रचलित प्रवृत्तियों का स्पष्ट उल्लेख करते हैं –

1. समाज में शैवमत का प्रचार जोर पकड़ रहा था। बोधायन ने नान्दी पाठ में रुद्र की वन्दना कर इस बात का संकेत स्पष्ट दिया है।

2. समाज में सामन्तवादी प्रथा के बीज का अंकुरण हो चुका था तथा समाज के लोग सुखी थे। राजकुलों द्वारा प्रजा के सुखों का ध्यान रखा जाता था। प्रहसन– साहित्य को मनोरंजन की दृष्टि से विशेष सम्मान प्राप्त था।

3. समाज में सामन्तों के बीच दास प्रथा का भी प्रचलन था।

4. बौद्ध धर्म के प्रति लोगों का विश्वास घट गया था। बौद्ध विहारों में व्यभिचार भावनाओं का प्रवेश हो चुका था तथा शाक्य श्रमण भौतिकता की ओर आकर्षित हो रहे थे।

5. तत्कालीन समाज में तंत्र–मंत्र के प्रति लोगों में पर्याप्त विश्वास था। रोगोपचार में शल्य क्रिया का भी प्रचलन विद्यमान था।

---

1. नाट्य कला प्राच्य एवं पाश्चात्य–डॉ. सुदर्शन मिश्र। 2.संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 585; आचार्य बलदेव उपाध्याय। 3. भगवदज्जुकीयम्–पृ. 5, सं. पी अनुजन्अचन। 4. वही– पृ. 8 व 9. 5.वही– पृ. 15. 6. वही– पृ. 4. 7. वही – वहीं. 8. वही – पृ. 19. 9. वही– पृ. 49. 10. भगवदज्जुकीय कालीन देश में बौद्ध धर्म की स्थिति इतनी गिरी हुई न थी जैसा कि मत्तविलास प्रहसन में देखने में आती है– संस्कृत में एकांकी रूपक, पृ. 144–145, डॉ. वीरबाला शर्मा। 11. भगवदज्जुकीयम्–पृ 51 व 54; सं. पी. अनुजन्अचन। 12. वही – पृ.83 व 84।

अध्याय–5

भगवदज्जुकीयम् : हिन्दी अनुवाद

भगवदज्जुकीयम् प्रहसन का सर्वप्रथम प्रकाशन अड्यार लाइब्रेरी मद्रास द्वारा 1925 ई. में किया गया। इसके सम्पादक पी. अनुजन् अचन हैं। अचन महोदय ने कतिपय हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस प्रहसन का सम्पादन कर अड्यार लाइब्रेरी के माध्यम से प्रकाशित कराया। आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है कि इन सभी हस्तलिखित प्रतियों का वृत्त यहाँ चर्चित हो। हाँ, इतना अवश्य है कि इसके मुद्रण, सम्पादन व प्रकाशन का श्रेय सम्यक् रूपेण अचन महोदय को ही है।

अपर प्रति देवभाषा प्रकाशन प्रयाग से डॉ. प्रभात शास्त्री द्वारा प्रकाशित की गयी है। दोनों ही प्रतियों में स्थान–स्थान पर पर्याप्त अन्तर है। यथास्थान इनको पाद टिप्पणी में दर्शाया भी गया है। पाद टिप्पणी में 'क' पी. अनुजन् अचन की पुस्तक हेतु प्रयुक्त है तथा 'ख' देवभाषा प्रकाशन प्रयाग द्वारा प्रकाशित प्रति हेतु। देवभाषा प्रकाशन की प्रति में व्याकरण की दृष्टि से शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया गया है।

इसके हिन्दी अनुवाद को व्यवहारिक भाषा के आवरण से आवृत किया गया है। कभी–कभी साहित्यिक कलेवर कृति के व्यवहारिक स्वरूप का ग्रहण बन जाता है। अस्तु, कृति के अनुवाद को इससे सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है–

भगवदज्जुकीयम्[1]

हरिः श्री गणपतये नमः

अविघ्नमस्तु[2]

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

(नान्दी के उपरान्त सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधारः त्वां पातु लक्षणाढ्य[3]-
स्सुरवरमुकुटेन्द्रचारुमणिघृष्टः।
रावणनमिताङ्गुष्ठो
रुद्रस्य सदर्चितः पादः।।1।।

इदमस्मदीयं[4] गृहं, यावत् प्रविशामि (प्रविश्य) विदूषक! विदूषक!

सूत्रधार – शास्त्रोक्त स्वरूपों से युक्त, श्रेष्ठ देवताओं के मुकुट के सुन्दर मणिगण घिस गये हैं जिनके चरण पर तथा रावण ने जिनके अंगूठे पर प्रणिपात किया है ऐसे भगवान् रुद्र का पूजित चरण आप सब की रक्षा करे।। 1 ।।

अरे! यह तो अपना ही घर है, तब तो मैं घर चलता हूँ (प्रवेश करके) विदूषक..! विदूषक..।

प्रविश्य

विदूषकः अअ्अ[5]! अअह्म्मि । (आर्य!अयमस्मि)

(प्रवेश करके)

विदूषक – हाँ आर्य!

सूत्रधारः विजनं तावत्, यावत्ते प्रियमाख्यास्यामि।

सूत्रधार – यहाँ एकदम निर्जन है। अतएव तुम्हें एक रोचक कथा सुनाता हूँ।

विदूषकः *अअ्अ*! ताह[6] (निष्क्रम्य प्रविश्य) इदं *विअणम्*[7]। पिअं दाव अअ्ओ आचक्खदु[8]। (आर्य! तथा। इदं विजनम्। प्रियं तावदार्यं आचक्षतु)[9]

विदूषक – आर्य! ऐसा ही करें। (जाने को उद्यत किन्तु घूमकर पुनः प्रवेश कर)। आर्य! इस घर में तो सचमुच ही कोई नहीं है। तब तो कुछ रोचक ही कथा होनी चाहिए।

सूत्रधारः श्रूयताम्। अद्यास्मि बहिर्नगरादागच्छतानेकसिद्धादेशजनितप्रत्य लक्षणिना ब्राह्मणेनाहमादिष्टः – अद्य सप्तमेऽहनि[10] राजकुले

तव प्रेक्षा भविष्यति। [illegible] राज्ञा दत्ता महतीं श्रियमवाप्स्यसीति। तस्य ब्राह्मणस्यामिथ्यादेशितया जनितोत्साहः सङ्गीतकं करिष्यामि।

सूत्रधार – सुनो! आज जब मैं नगर के बाहर से आ रहा था तभी अनेक सिद्धपुरुषों तथा (लाक्षणिक) सदाचारी ब्राह्मणों के द्वारा मुझे आदिष्ट किया गया कि आज से सातवें दिन राजकुल में तुम्हारा स्वरचित रूपक अभिनीत होगा। तुम्हारे इस प्रयोग से परितुष्ट होने पर राजा तुम्हें प्रभूत धन देगें। उस ब्राह्मण का वचन कभी मिथ्या नहीं होता। अतएव उत्साह पूर्वक मैं उस रूपक के प्रेक्षण का विधान करूँगा।

विदूषकः कदमं दाणि अएएण णाडअं णाडीअदि[11]। (कतमदिदानीमार्येण नाटकं नाट्यते)

विदूषक – आर्य के द्वारा इस नाटक का किस प्रकार से मंचन होगा?

सूत्रधारः अत्रैव मे चिन्ता। अथ तु नाटकप्रकरणोद्भवासु वारे[12] ईहामृगडिमसमवकारव्यायोगभाणसंल्लापवीथ्युत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनानां दशजातिषु नाट्यरसेषु हास्यमेव प्रधानमिति पश्यामि। तस्मात् प्रहसनमेव प्रयोक्ष्यामि।

सूत्रधार – यही तो मुझे भी चिन्ता है। नाटक व प्रकरण से ही उद्भूत वार, ईहामृग, डिम, समवकार, व्यायोग, भाण, संल्लाप, वीथी, उत्सृष्टिकाङ्क व प्रहसन आदि रूपक की दश जातियों में व नाट्य रसों में हास्य रस ही प्रधान दीखता है। अतः मैं प्रहसन रूपक के प्रेक्षण का ही प्रयोग करूँगा।

विदूषकः अअ्अ! अहं हस्सो वि[13] पहसणं ण आणे। (आर्य! अहं हास्येऽपि प्रहसनं न जाने)

विदूषक – आर्य! मैं हंसी में भी नहीं जानता कि प्रहसन क्या है।

सूत्रधारः तेन तु शिक्षतु[14] भवान्। न शक्यमशिक्षितेन किञ्चिदपि ज्ञातुम्।

सूत्रधार – तब तो तुम निश्चित ही उसे सीखो अशिक्षित व्यक्ति कैसे उसे समझ सकता है।

विदूषकः तेण हि अअ्ओ एव्व मे उपदिसदु।(तेन हि आर्य एव मे उपदिशतु)

विदूषक – तब तो इस संबंध में आप ही मुझे कुछ बतायें।

सूत्रधारः वाढम्।

सूत्रधार – हाँ हाँ ... अवश्य

ज्ञानार्थकृतबुद्धिः

[15]सन्मार्गेणानुगच्छ गच्छन्तम्।

(नेपथ्ये)

शाण्डिल्य शाण्डिल्य

(श्रुत्वा)

ज्ञानार्जन हेतु दत्तचित्त हो (तुम्हें) सन्मार्ग पर चलते हुए का अनुसरण करना ही चाहिए।

(निपथ्य में)

शाण्डिल्य ! शाण्डिल्य!

(सुनकर)

सूत्रधारः योगेश्वरं द्विजवृषं

शिष्य इवेमं[16] परिव्राजम्।। 2 ।। (निष्क्रान्तौ)---[17]

।। आमुखम् ।।

सूत्रधार – ब्राह्मणों में श्रेष्ठ योगेश्वर। इस सन्यासी का मैं शिष्य की तरह अनुगमन कर्ता के रूप में उपस्थित हूँ। (दोनों जाते हैं)

।।आमुख समाप्त।।

(ततः प्रविशति परिव्राजकः)

परिव्राजकः ***शाण्डिल्य! शाण्डिल्य!(पृष्ठतो विलोक्य) न तावत्***

दृश्यते[18] सदृशमस्य तमोवृतस्य कुत,
देहो रोगनिधिर्जरावशगतो लीनान्तकाधिष्ठितो
यो नित्यप्रतिघातरुद्धविषयस्तीरे यथा पादपः।
तं लब्ध्वा सुकृतैरनेकगुणितैर्देहात्मना विस्मितो
मत्तो यो बलरूपयौवनगुणैर्दोषान् न तान् पश्यति ।। 3 ।।

तस्मादनपराद्धः खल्वयं तपस्वी। पुनरपि समाह्वानं करिष्ये। शाण्डिल्य! शाण्डिल्य!

(इसके पश्चात् परिव्राजक का प्रवेश)

परिव्राजक - शाण्डिल्य। शाण्डिल्य! (पीछे की ओर देखकर) तामसवृत्ति का यह व्यक्ति हमेशा ऐसा ही करता है। कहाँ... है यह मूर्ख...वृद्धावस्था का वशीभूत यह शरीर रोगों की खान है। इसके अन्दर यमराज बैठा हुआ है। तटवर्ती वृक्ष की तरह नित्य ही विषय वासना रूपी तेज धारा का थपेड़ा खाता रहता है। उसको पाकर अनेक गुने पुण्यों से देह को ही आत्मा मान कर विस्मित होने वाला और, मुझसे बल, रूप तथा यौवन में अधिक यह (शाण्डिल्य) उन दोषों को नहीं देख रहा है ।। 3 ।।

इसका कोई अपराध नहीं है, यह तो इसकी जवानी का अपराध है इसलिए फिर मैं उसे बुलाता हूँ। शा...ण्डिल्य! शा..ण्डिल्य!

(ततः प्रविशति शाण्डिल्यः)

शाण्डिल्यः भो! पुठमं[19] एव्व अहं करडु[20] असेससमिद्धे णिरक्खरप्पक्खित्तजीहे कण्ठप्पसत्तजण्णोववीदे बह्मण्ण[21] मत्तपरितुट्ठे कुले पसूदो। तदो दुदीअं अह्माणं ग्रेहे असणणासेण बुभुक्खिदो, पादरसण्णलोहेण सक्किअ समणअं पव्वइदोह्मि तदो तहिं दासीए उत्ताणं एककाल भत्ततणेण बुभुक्खिदो तं पि विसज्जिअ चीवरं छिद्दिअ[22] पत्तं पतोलिअ छत्तमत्तं गण्हिअ[23] णिग्गदोह्मि। तदो तिदीअं इमस्स दुट्ठाचअअस्स[24] भण्डभार गद्दभो संवुत्तो[25]। *ता अदूरगदं भअवन्तं संभावेमि*[26]। कहिं णु खु गओ भअवो। आ! एसो दुट्ठलिगी पादरसणलोहेण एआई भिक्खं आहिण्डदुं पुव्वं

गदोत्ति[27] तक्केमि [28] (परिक्रम्य दृष्ट्वा) एसो खु भअवो। (उपगम्य)[29] मरिसेदु मरिसेदु भअवो। (भोः! प्रथममेवाहं करटकशोषसमृद्धे निरक्षरप्रक्षिप्तजिह्वे कण्ठप्रसक्तयज्ञोपवीत ब्राह्मण्यमात्रपरितुष्टे कुले प्रसूतः। ततो द्वितीयमस्माकं गेहे अशननाशेन बुभुक्षितः प्रातरशनलोभेन शाक्यश्रमणकं प्रव्रजितोऽस्मि। ततस्तस्मिन् दास्याः पुत्राणामेक कालभक्तत्वेन बुभुक्षितस्तमपि विसृज्य चीवरं छित्त्वा पात्रं प्रतोल्य छत्रमात्रं गृहीत्वा निर्गतोऽस्मि। ततस्तृतीयमस्य दुष्टाचार्यस्य भाण्डाभारगर्दभः संवृत्तः। तददूरागतं भगवन्तं संभावयामि। कुत्र नु खलु गतो भगवान्। आ! एष दुष्टलिङ्गी प्रातरशनलोभेनैकाकी भिक्षामाहिण्डितुं पूर्वं गत इति तर्कयामि। एष खलु भगवान्। मृष्यतां मृष्यतां[30] भगवान्।

(शाण्डिल्य का प्रवेश)

शाण्डिल्य - अरे! एक तो मैं अनपढ़, गले में टंगे हुए यज्ञोपवीत मात्र से परितुष्ट, चोरी के कार्य में प्रवीण मिथ्याभाषी ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ हूँ। दूसरी बात यह कि अपने घर में भोजन के अभाव के कारण भूख से त्रस्त, प्रातः काल ही भोजन पाने की लालसा से तो मैं बौद्ध भिक्षु बना। उस पर भी इन दासीपुत्र बौद्ध भिक्षुओं को क्षुधाशान्ति के लिए एक ही समय भोजन मिलने के कारण भूख से परेशान मैं उस बौद्ध विहार को भी त्याग कर चीवर को फाड़ कर, पात्र तोड़ कर, एक मात्र छत्र (छाता) लेकर निकला हूँ। तीसरी बात यह कि इस दुष्टाचार्य की झोली को ढोते ढोते गधा बन गया हूँ। ओ. ..ह। यह तो समीप में ही संभवतः गुरु जी आते दीख रहे हैं। यह कहाँ चले गये होंगे। अरे! ऐसा लगता है कि शायद यह पाखण्डी संन्यासी जलपान की लालच से अकेले ही भिक्षाटन हेतु निकल गया था। (चारों ओर घूमकर व देखकर) अरे! यह तो सचमुच में स्वामी जी ही हैं। (पास जाकर) प्रभु! क्षमा करें कृपया क्षमा करें।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! न भेतव्यं, न भेतव्यम्।

परिव्राजक - शाण्डिल्य! डरो नहीं, डरो नहीं।

शाण्डिल्य. भो ! भअव ! इमस्सि[31] जीवलोए [illegible][32] सुहप्पहाणे केण विहिणा भिक्खं आहिण्डदि[33] भअवो[34]। (भो भगवन्! अस्मिञ्जीवलोके नित्योत्सवविशेषे सुखप्रधाने केन विधिना भिक्षामाहिण्डते भगवान्।

शाण्डिल्य – भगवान्! नित्य प्रति उत्सव मनायें जाने वाले इस सुख–प्रधान जीव लोक में आप किस प्रकार भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं।

परिव्राजकः शृणु,

अमानकामः[35] सहितव्यधर्षणः
कृशाञ्जनाद्भैक्षकृतात्मधारणः।
चरामि दोषव्यसनोत्तरं जगद्
इदं बहुग्राहमिवाप्रमादवान्।। 4 ।।

परिव्राजक – सुनो– मान कामना से रहित होकर क्रोध तथा उत्पीड़नादि के द्वारा किसी भी प्रकार से विकृत हुए बिना, दुर्बल लोगों से भी भिक्षा लेकर किसी तरह जीने वाला मैं अनेक दोषों से युक्त इस संसार में अनेक मगरों से युक्त गहरे सरोवर की भांति बिना प्रमाद का कहीं भी विचरण करता रहता हूँ (अर्थात् सतत भ्रमणशील हूँ)।। 4 ।।

शाण्डिल्यः भो! भअवं!

ण मामओ अत्थि ण भादुओ वा
पिदा कुदो मे भअवप्पसादो।
एक्को अहं अण्णहदत्तणेण
जदिं पविट्ठो ण[36] खु धम्मलोहा।। 5 ।।

(न मामकोऽस्ति न भ्रातृको वा
पिता कुतो मे भगवत्प्रसादः।
एकोऽहमन्न[37] हतत्वेन
यतिं प्रविष्टो न खलु धर्मलोभात्।।)

शाण्डिल्य – भो भगवन्!

मेरे पास अपना कुछ नही है, न भाई. न पिता! भगवान् का प्रसाद मुझे कहाँ? इसीलिए अन्न के मारे मैंने संन्यास का आश्रय ग्रहण किया है। किसी भी प्रकार के धर्मलोभ से ग्रस्त होकर नहीं।। 5 ।।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! किमेतत्।

परिव्राजक – शाडिल्य! यह क्या कह रहे हो–

शाण्डिल्यः णं भूदत्थो अलिअं[38] बन्धअं त्ति भअवो भणादि।
(ननु भूतार्थोऽलीकं बन्धकमिति भगवान् भणति)

शाण्डिल्य – मनुष्य का धर्म है सत्य बोलना, झूठ बोलना बन्धन का कारण है, ऐसा भगवान् ही तो कहते हैं।

परिव्राजकः अथ किम्। सत्यमनृतं चाभिसन्धाय कृतं बन्धं भवति। कुतः,

यदा तु सङ्कल्पितमिष्टमिष्टतः,
करोति कर्मावहितेन्द्रियः पुमान्।
तदास्य[39] तत् कर्मफलं सदा सुरैः,
सुरक्षितो न्यास इवानुपाल्यते।। 6 ।।

परिव्राजक – हाँ, हाँ! क्यों नहीं! सच और झूठ मिलकर ही तो बन्धन का कारण होता है। क्यों कि –

जब मनुष्य इष्ट की सिद्धि का संकल्प कर लेता है तो इष्ट कर्म को सावधान चित्त से करता है तथा इन कर्मों का फल सुरों के द्वारा हमेशा सुरक्षित न्यास या थाती की भांति पोषित किया जाता है।।6।।

शाण्डिल्यः कदा णु खु तस्स फलं लहादि[40]।
(कदा नु खलु तस्य फलं लभते)

शाण्डिल्य – **कर्म** का फल! वह कब प्राप्त करता है।

परिव्राजकः यदा विरागमैश्वर्यं लभते[41]।

परिव्राजक – जब वैराग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

शाण्डिल्यः तं पुण कहं लहदि। (तत् पुनः कथं लभते)

शाण्डिल्य – वह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त होता है?

परिव्राजकः असङ्गतया।

परिव्राजक – विषयों का संग छोड़ने से।

शाण्डिल्यः किं[42] पुण एदं असङ्गदत्ति[43] पुच्छादि।
(किं पुनरेतदसङ्गतेति पृच्छति)

शाण्डिल्य – यह विषयों का संग छोड़ना क्या है?

परिव्राजकः रागद्वेषयोर्मध्यस्थता। कुतः,

> सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां
> भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्।
> सुहृत्स्वमित्रेषु च भावतुल्यतां
> वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसङ्गताम्।। 7 ।।

परिव्राजक – रागद्वेष के प्रति तटस्थ रहना क्यों कि –
सुख तथा विषाद के क्षणों में समान व्यवहार करना। भय तथा हर्ष में कभी भी अतिरिक्त व्यवहार न करना। उपकारी तथा अपकारी के प्रति हमेशा सम भाव रखना ऐसे भावों को तत्त्वज्ञानी लोग असंगता कहते हैं।। 7 ।।

शाण्डिल्यः एदं पुण *अत्थि*[44]। (एतत् पुनरस्ति)

शाण्डिल्य – यह फिर कैसे होता है।

परिव्राजकः नासतः[45] संज्ञा भवति।

परिव्राजक – असत् पदार्थ की कोई संज्ञा नहीं होती।

शाण्डिल्यः – किं[46] सक्कं कत्तुं ति भअवो भणादि। (किं शक्यं कर्तुमिति भगवान् भवति)

शाण्डिल्य – भगवन् 'आप ही बताएँ क्या यह करना संभव है?'

परिव्राजकः कः संशयः[47]।

परिव्राजक – इसमें क्या सन्देह कर रहे हो।

शाण्डिल्यः *अलिअं, अलिअं*[48]एदम्। (अलीकं अलीकमेतत्)

शाण्डिल्य – यह झूठ है, झूठ है।

परिव्राजकः कथमिव

परिव्राजक – कैसे?

शाण्डिल्यः भअवो खु दाव *किस्स मं* [49] **कुप्पदि। (भगवान् खलु तावत् कस्मान्मे कुप्यति।)**

शाण्डिल्य – भगवन्। आप फिर मेरे ऊपर क्यों कोप करते हैं?

परिव्राजकः नाधीष इति।

परिव्राजक – तुम पढ़ते नहीं हो, इसलिए।

शाण्डिल्यः जइ[50] **अहं अहीआमि वा णाहीआमि वा किं तव मुत्तस्स। (यद्यहमधीये वा नाधीये वा किं तव मुक्तस्य)**

शाण्डिल्य – मैं पढ़ूँ या ना पढ़ूँ आपको इससे क्या लेना देना है। आप तो मुक्त हैं।

परिव्राजकः मामैवम्। अभ्युपगतशिष्यार्थं ताडनं स्मृतमिति। तस्मादकुपितश्चाहं श्रेयोर्थं भवन्तं ताडयामि।

परिव्राजक – ऐसा नहीं है। अनुगत शिष्य को थप्पड़ लगाने का भी विधान है। इसलिए बिना क्रोध किए हुए भी मैं तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हें थप्पड़ देता हूँ (मारता हूँ)।

शाण्डिल्यः ***अच्छेरं। अच्छेरं***[51]**। अकुविदो णाम मं** ***ताडेइ। छिज्जी अदु एसा कहा***[52]**। अदिक्कमदि भिक्खवेला**[53]**। (आश्चर्यं! आश्चर्यं! अकुपितो नाम मां ताडयति। छिद्यतामेषा कथा अतिक्रामति भिक्षावेला)**

शाण्डिल्य – आश्चर्य है। आश्चर्य है। बिना क्रोध के ही आप मुझको मारते हैं। अच्छा! छोड़िए इन बातों को। भिक्षा की बेला बीती जा रही है। (यहाँ पर मधुकरी भिक्षा का संकेत है)

परिव्राजकः मूर्ख ! प्रातस्तावत् न[54] मध्याह्नः । न्यस्तमुसले व्यङ्गारे सर्वमुक्तजने काल इत्युपदेशः । तस्माद्विश्रमार्थमिदमुद्यानं प्रविशावः ।

परिव्राजक – अरे मूर्ख ! अभी तो सवेरा हुआ है मध्याह्न नहीं है। यह तो लोगों के कूटने पीसने व भोजन बनाने का समय है। आँगन में मूसलों की धमक बन्द होने पर तथा अंगीठी के बुझ जाने पर घर में सभी के भोजन कर लेने पर, भिक्षा का काल (समय) होता है। तब तक विश्राम के लिए इसी बगीचे में चलते हैं।

शाण्डिल्यः हा ! हा ! पडिञ्ञाहाणिओ किल भअवो[53] (हा ! हा ! प्रतिज्ञाहानिकः किल भगवान् ।)

शाण्डिल्य – हाय ! हाय ! भगवान् आप को तो प्रतिज्ञा हानि का दोष लगेगा।

परिव्राजकः कथमिव

परिव्राजक – वह कैसे–

शाण्डिल्यः णं समसुखदुक्खो[56] किल भअवो । (ननु समसुखदुःखः किल भगवान्)

शाण्डिल्य – क्यों कि आप तो सुख और दुःख को समान भाव से लेते हैं।

परिव्राजकः अथ किम् । समसुखदुःखो ममात्मा कर्मात्मा विश्रममिच्छति ।

परिव्राजक – क्यों नहीं। मेरी आत्मा तो सुख व दुःख में सतत समान है। कर्मात्मा विश्राम की इच्छा कर रही है।

शाण्डिल्यः भो[57] ! भअवं ! को एसो अत्ताणाम् । को अण्णा कम्मत्ता णाम। (भो भगवन् ! क एष आत्मा नाम। कोऽन्यः कर्मात्मा नाम)

शाण्डिल्य – भगवन् ! यह आत्मा क्या है? और इससे भिन्न यह कर्मात्मा किसे कहते हैं?

परिव्राजकः शृणु–

य: स्वप्ने गगनमुपैति सोऽन्तरात्मा,[58]

सोऽप्यात्मा[59] विधिविहितं प्रयाति यश्च।

देहोऽयं[60] नर इति संज्ञितोऽव्यथा[61] वा,

कर्मात्मा श्रमसुखभाजनं नराणाम्।। 8 ।।

परिव्राजक – सुनो जो स्वप्न में गगन में विचरण करती है वह तो अन्तरात्मा है और जो विधिविहित रीति से चलती है वह भी आत्मा है। परन्तु व्यथा से भिन्न यह शरीर कर्मात्मा है, यही लोगों के श्रमसुख का भाजन है।। 8 ।।

शाण्डिल्यः जो अजरो अमरो अच्छेज्जो अभेज्जो सो अत्ता णाम। जो हसदि हासेदि सअदि भुञ्जदि[62] विलअं च गच्छदि सो कम्मत्ता णाम। (योऽजरोऽमरोऽच्छेद्योऽभेद्यः स आत्मा नाम। यो हसति हासयति शेते भुङ्क्ते विलयं च गच्छति स कर्मात्मा नाम।

शाण्डिल्य – जो अजर है, अमर है अच्छेद्य व अभेद्य है वह आत्मा कहलाती है। जो हंसती–हंसाती, खाती–पीती, सोती व विनाश को प्राप्त होती है वह कर्मात्मा है।

परिव्राजकः यथा ग्राह्यं तथा गृहीतम्।

परिव्राजक – जैसा भी समझ में आता हो समझ लो।

शाण्डिल्यः *आ! आवेहि। अभिग्गहिदोसि*[63]। *(आ! अपेहि अभिगृहीतोऽसि)*

शाण्डिल्य – अरे! आप ने तो निग्रह स्थान को प्राप्त कर लिया है।

परिव्राजकः कथमिव।

परिव्राजक – कैसे–

शाण्डिल्यः णं सो एव्व दाणिं[64] एसो। णहि सरीरं विणा *अत्थि किं पि*[65]। **(ननु स एवेदानीमेषः। नहि शरीरं विनास्ति किमपि।)**

शाण्डिल्य – अरे वही तो मैं समझा रहा हूँ शरीर के बिना कुछ भी नहीं है।

परिव्राजकः लौकिकमभिहितम्। यतश्च भेदमुपगतानां सत्त्वानां स्थानानि श्रूयन्ते, अत एवं ब्रूमः।

परिव्राजक – मैंने लोक–व्यवहार की बात की है, क्योंकि भिन्न–भिन्न सत्त्वों (आत्माओं) के स्थान अलग अलग होते हैं – ऐसा सुना है। अतः मैंने ऐसा कहा।

शाण्डिल्यः सव्वं दाव चिट्ठदु[66]। तुवं[67] दाव को। (सर्वं तावत्तिष्ठतु। त्वं तावत् कः।)

शाण्डिल्य – अरे रहने दें इन बातों को। पहले यह बतायें कि आप कौन हैं?

परिव्राजकः शृणु,

खपवनसलिलानां तेजसश्चैकदेशा –

दुपचितचलमूर्तिः पार्थिवद्रव्यराशिः।

श्रवणनयनजिह्वानासिकास्पर्शवेदी

नर इति कृतसंज्ञः कोऽप्यहं[68] प्राणिधर्मा।।9।।

परिव्राजक – सुनो आकाश, वायु, जल, तेज (अग्नि) तथा पृथ्वी का एक–एक भाग तथा अधिक भाग पार्थिव द्रव्य से यह शरीर चलमूर्ति बनी है। कान, आँख, जीभ, नाक तथा त्वक् इन्द्रियों से युक्त प्राणवान् कोई मनुष्य ही हूँ।। 9 ।।

शाण्डिल्यः हा!हा! एत्तिअमत्तेण अत्ताणं पि ण अणादि[69]। किं पुण अत्ताणं। (विलोक्य)[70] भो! अअवं! इदं उअ्आणं[71]। (हा! हा! एतावन्मात्रेण आत्मानपि न जानाति। किं पुनरात्मानम्। भो भगवन्! इदमुद्यानम्!)

शाण्डिल्य – हा! हा! इस तरह तो आप अपने को भी नहीं पहचानते। तो फिर आत्मा को कैसे समझ पायेंगे। भगवन्! उद्यान तो आ गया।

परिव्राजकः प्रविशाग्रतः[72]। विविक्तशरणारण्यप्रतिश्रया वयम्।

परिव्राजक – पहले तुम इसमें प्रवेश करो। बस! इसी निर्जन वनस्थली में हम लोगों का विश्रामस्थल होना चाहिए।

शाण्डिल्यः भअवं[73] एव्व पुरदो पविसदु[74]। अहं पिट्ठदो पविसामि। (भगवानेव पुरतः प्रविशतु। अहं पृष्ठतः प्रविशामि।)

शाण्डिल्य – भगवन्! आगे आप चलें फिर मैं आ रहा हूँ।

परिव्राजकः किमर्थम्।

परिव्राजक – क्यों–

शाण्डिल्यः *पोला अणीए*[75] मम मादाए सुदं असोअपल्लवन्तलणिलुद्धो वग्घो पडिवसदित्ति। ता भअवं एव्व पुरदो पविसदु। *अहं पिट्ठदो पविसामि*[76]। (पौराणिक्या मम मातुः श्रुतमशोकपल्लवान्तर निरुद्धो व्याघ्रः प्रतिवसतीति। तत् भगवानेव पुरतः प्रविशतु, अहं पृष्ठतः प्रविशामि।)

शाण्डिल्य – मैंने बहुत पहले कभी अपनी माँ से सुना था कि अशोक वृक्ष के पल्लवों के बीच बाघ छिपे रहते हैं। अतः पहले आप ही प्रवेश करें फिर मैं ठीक आपके पीछे–पीछे ही आ रहा हूँ।

परिव्राजकः बाढम् (प्रविशति)

परिव्राजक – ठीक है। (प्रवेश करते हैं)

शाण्डिल्यः अविहा! वग्घेण गहिदोह्मि। मोएथ[77] मं वग्घमुहादो[78]। **अणाहो विअ वग्घेण खाइदोह्मि[79]। इदं खु लुहिअं पस्सवदि कण्ठादो।(अविधा! व्याघ्रेण गृहीतोऽस्मि। मोचयथ मां व्याघ्रमुखात्। अनाथ इव व्याघ्रेण खादितोऽस्मि। इदं खलु रुधिरं प्रस्रवति कण्ठात्।)**

शाण्डिल्य – बचा....ओ। मैं बाघ के द्वारा पकड़ लिया गया हूँ। मुझे बाघ के मुख से निकालो। हाय! हाय! अनाथ की तरह मुझे तो बाघ खा रहा है। अरे! यह तो मेरे कण्ठ से रक्तस्राव भी होने लगा है।

परिव्राजकः शाण्डिल्य ! न भेतव्यं, न भेतव्यम्। मयूरः खल्वेषः।

परिव्राजक – शाण्डिल्य! डरो नहीं! डरो नहीं। यह तो मयूर है।

शाण्डिल्यः सच्चं मोरो। (सत्यं मयूरः)

शाण्डिल्य – सच! क्या यह मयूर है ?

परिव्राजकः अथ किम्। सत्यं मयूरः।

परिव्राजक –इसमें भी कोई सन्देह है समचुच ही यह मयूर है।

शाण्डिल्यः जइ मोरो उग्घाडेमि[80] अक्खिणी। (यदि मयूरः उद्घाटयाम्यक्षिणी।)

शाण्डिल्य – यदि यह मयूर है तब तो मैं आंखें खोलता हूँ।

परिव्राजकः छन्दतः।

परिव्राजक – हाँ! हाँ! खोलो खोलो।

शाण्डिल्यः अविहा। दासीए वुत्तो[81] वग्घो मब्भएण मोररूवं गहणिअ[82] पलाअदि। (उद्यानं निरूप्य) ही। ही। चंपअज्जुण[83] कदंबणीवणिउलतिलअकण्णि आरकुरव अकप्पूरचूदपि[84] अङ्गुसाल तालतमालपुण्णाअणाअबउलसरल सज्जासिन्दुवारतिणसु–ल्ल[85] सत्तपण्ण[86]कणवीरकुडअवण्णिचन्दणासो[87]अमल्लि आणन्दिवत्तत[88] अरखदिर कदली समवइण्णं बसन्तोवसोहिदप्पवाल– पत्तपल्लव[89] कुसुमम्ञ्जरीसमाउलं अदिमुत्त माहवील[90]दामण्डवमण्डिदं मोरकोइलमत्तब्भम रमहुरारावसंघुट्ठं पिअजणविप्पओअसमुप्पण्ण– सोआभिभूदजुवदीजणांणुद्दव[91] अरं संपउत्ताणं[92] सुहावहं अहो! रमणिज्जं खु इदं उअआणं[93]। (अविधा! दास्याः पुत्रो व्याघ्रो मद्भयेन मयूररूपं गृहीत्वा पलायते। ही! ही! चम्पकार्जुन–कदम्ब–नीप–निचुल–तिलक–कर्णिकार–कुरबक–कर्पूर–चूत–प्रियङ्गु–साल– ताल–तमाल–पुन्नाग–नाग–बकुल–सरल–सर्ज– सिंधुवार–तृणशूल–सप्तपर्ण–करवीर–कुटज–वह्नि–चन्दनाशोक– मल्लिका–नन्द्यावर्त–तगर–खदिर–कदलीसमवकीर्णं–वसन्तोपशोभितं–प्रवालपत्रपल्लवदलकुसुममञ्जरी समाकुलं अतिमुक्तमाधवी लतामण्डप–मण्डितं मयूरकोकिलमत्तभ्रमरमधुरारावसंघुष्टं

रजनविप्रयोगसमुत्पन्नशोकाभिभूतयुवतिजनानामनुतापकर संप्रयुक्तानां सुखावहमहो! रमणीयं खल्विदमुद्यानम्)

शाण्डिल्य – आश्चर्य है। मुझ दासी पुत्र के भय से बाघ मयूर का रूप बदल कर भाग गया (बगीचे को देखकर) ही! ही! चम्पक, अर्जुन, कदम्ब, नीप, निचुल, तिलक, कर्णिकार, कुरबक, कर्पूर, आम, प्रियङ्गु, साल, ताल, तमाल, पुन्नाग, नाग, बकुल, सरल, सर्ज, सिन्धुवार, तृणशूल, शतपर्ण, करवीर, कुटज, वह्नि, चन्दन, अशोक, मल्लिका, नन्द्यावर्त, तगर, खदिर तथा कदली के वृक्षों से शोभित, वसन्त में शोभा प्राप्त कर रहे कुसुमित प्रवालपुष्प एवं लतायें, माधवी लताओं के स्वतन्त्र विस्तार से निर्मित लतामण्डप, मयूर, कोकिल तथा उन्मत्त भौंरों के गुञ्जन से गुञ्जायित, प्रियजन के बिछोह से उत्पन्न शोक से शोकाकुल युवतियों के विरह सन्ताप को समाप्त करने वाला है (यह वन)। अरे! निश्चित रूप से ही यह बगीचा बड़ा रमणीय है।

परिव्राजकः मूर्ख अहन्यहनि हीयमानेष्विन्द्रियेषु किं ते रमणीयम्। कुतः

> अभ्यागतः किसलयाभरणो वसन्तः
> प्राप्ता शरत् कुमुदषण्डविभूषणेति।
> बालो नवेष्वृतुषु रज्यति नाम लोके
> यज्जीवितं हरति तत्किल रम्यमस्य।। 10 ।।

परिव्राजक – अरे मूर्ख! दिनानुदिन इन्द्रियों के शिथिल होने पर भी तुझे यह रमणीय ही लग रहा है।

कुमुद-समूहों से युक्त शरद् ऋतु की तरह नवीन किसलयाभूषणों को प्राप्त कर वसन्तऋतु आ गयी है। इस नयी ऋतु में बच्चे तो आनन्द पाते ही हैं किन्तु इसकी सुन्दरता हम जैसों का तो प्राण ही हरण कर रही है।

शाण्डिल्यः जं जदा रमणिज्जं तं तदा रमणिज्जं ति पुच्छदि (यद्यदा रमणीयं तत्तदा रमणीयमिति पृच्छ्यते)।

शाण्डिल्य मै तो यह जानना चाहता हूँ कि वस्तुत इसको जितना रमणीय होना चाहिए क्या उतना रमणीय है?

परिव्राजकः अपाण्डित्यमभिहितम्। पश्य,

अनागतं प्रार्थयतामतिक्रान्तं च शोचताम्।

वर्तमानैरतुष्टानां निर्वाणं नोपपद्यते।। ।। ।।

परिव्राजक – अज्ञानतावश ही तुम्हारी ऐसी जिज्ञासा है। देखो– अनागत की प्रार्थना करने वाले, बीती हुयी बातों की शोच करने वाले तथा वर्तमान से असन्तुष्ट व्यक्ति को निर्वाण नहीं मिला करता।। ।। ।।

शाण्डिल्यः आअदमाणो पन्था। कहिं दाणि उवविसमो[94] (आयतमानः पन्थाः। कुत्रेदानीमुपाविशावः।)

शाण्डिल्य – मार्ग बहुत ही विस्तृत है। अतएव अब हम दोनों कहाँ बैठें!

परिव्राजकः इहैवासिष्यावहे[95]।

परिव्राजक – बस! बस! यहीं बैठेगें हैं।

शाण्डिल्यः ***अचोक्खं, अचोक्खं। (अचौक्षं!अचौक्षं)[96]***

शाण्डिल्य – यह स्थान तो अपवित्र है अपवित्र है।

परिव्राजकः मेध्यमरण्यमदूष्या भूः।

परिव्राजक – अरण्य और वहाँ की भूमि पवित्र मानी गयी है।

शाण्डिल्यः – जदा परिस्सन्तो उवविसदुकामो[98] तदा अचोक्खं चोक्खं[99] वा करेसि। (यदा परिश्रान्त उपवेष्टुकामस्तदाचौक्षंचौक्षं वा करोषि)

शाण्डिल्य – यदि बहुत थक गए हो और बैठने की इच्छा ही है तो अपवित्र को पवित्र कर लो।

परिव्राजक. श्रुति. प्रमाण, नाहम्। कुत.,

अतिमानोन्मत्ताना-

महिते हितमिति कृतप्रतिज्ञानाम्।

नैवास्ति परं तेषां

स्वच्छन्दकृतप्रमाणानाम्।। 12 ।।

परिव्राजक – मैं नहीं कहता, इसमें तो श्रुति प्रमाण है। क्यों कि-

अधिक मान से उन्मत्त व्यक्ति अहित को भी हित समझ बैठता है। उसके लिए कुछ विचारणीय नहीं है, क्योंकि वह अपने ढंग से ही प्रमाण बनाता रहता है।। 12 ।।

शाण्डिल्यः अप्पमाणं तुह एदं[100] बहुअं मन्तअन्तस्स (अप्रमाणं तवैतत् बहुकं मन्त्रयमाणस्य)।

शाण्डिल्य – आप की यह बात तो अप्रमाण ही है क्योंकि आप बहुत बोलते हैं।

परिव्राजकः मा मैवम्

प्रमाणं कुरु यल्लोके, प्रमाणीक्रियते बुधैः।

नाप्रमाणं प्रमाणस्थाः करिष्यन्तीति निश्चयः।।13।।

परिव्राजक – नहीं, नहीं! ऐसा नहीं है-

संसार में विद्वानों ने जिसे प्रमाण कहा है उसी को प्रमाण मानो। अप्रमाण को प्रामाणिक व्यक्ति प्रमाण नहीं मान सकते हैं।। 13 ।।

शाण्डिल्यः ण खु[101] दे पमाणं जाणामि[102]। (न खलु ते प्रमाणं जानामि)।

शाण्डिल्य – मैं तो आप के प्रमाण को नहीं जानता।

परिव्राजकः आगच्छ[103] वत्स! अधीष्व तावत्।

परिव्राजक – आओ वत्स। उसको पढ़ो।

शाण्डिल्यः ण दाव अज्झइस्सं (न तावदध्येष्ये)

शाण्डिल्य – हमें नहीं पढ़ना है।

परिव्राजकः किमर्थम्।

परिव्राजक - आखिर क्यों?

शाण्डिल्यः अज्झअणस्स दाव अत्थं सोदुमिच्छामि (अध्ययनस्य तावदर्थं श्रोतुमिच्छामि)

शाण्डिल्य - अध्ययन का मैं प्रयोजन जानना चाहता हूँ।

परिव्राजकः अधीताध्ययनैरपि कालान्तरविज्ञेया[104] भवन्त्य-ध्ययनार्थाः। तस्मादधीष्व तावत्।

परिव्राजक - अध्ययन के पश्चात् समय आने पर उसका प्रयोजन समझ में आता है। इसलिए पहले पढ़ो।

शाण्डिल्यः अधीदे[105] कि भविस्सदि। (अधीते किं भविष्यति।)

शाण्डिल्य - पढ़ने से क्या होगा।

परिव्राजकः शृणु। ज्ञानाद्भवति विज्ञानं, विज्ञानात्संयमः, संयमात् तपः, तपसो योगप्रवृत्तिः, योगप्रवृत्तेरतीतानागतवर्तमानतत्त्वदः भवति। एतेभ्योऽष्टगुणमैश्वर्यं लभते।

परिव्राजक - सुनो! -ज्ञान से विज्ञान की उत्पत्ति होती है। विज्ञान से संयम होता है। संयम से तप, तप से योग की प्रवृत्ति तथा योग से भूत भविष्य एवं वर्तमान के तत्वों का दर्शन प्राप्त होता है। इससे अणिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है।

शाण्डिल्यः भो! भअवं! अप्पच्चक्खे जहाकामं मम बुद्धिं परिभविअ भणसि, सक्कं पुण *अदिट्ठे भअवादो परगेहाणि*[106] पविसिदुं (भो! भगवन्! अप्रत्यक्षे यथाकामं मम बुद्धिं परिभूय भणसि, शक्यं पुनरदृष्टः परगेहानि प्रवेष्टुम्)।

शाण्डिल्य - भगवन्! अप्रत्यक्ष रूप से आप मुझे ठग रहे हैं। मुझसे छिप कर आप दूसरों के घरों में प्रवेश करना चाहते हैं।

परिव्राजकः किमभिप्रेतं भवतः।

परिव्राजक - तुम कहना क्या चाहते हो। आशय क्या है तुम्हारा.

शाण्डिल्य मम अभिप्पेद सक्कि असमण आण कारणादे *सुसाधिदाणि सङ्घप्पवुत्ताणि*[107] भो अणाणि अहृणिदु। (मम अभिप्रेत शाक्यश्रमणकानां कारणात् सुसाधितानि सङ्घप्रयुक्तानि भोजनानि अशितुम्।

शाण्डिल्य – मेरा आशय शाक्य भिक्षुओं के हेतु बौद्ध विहार में निर्मित सुस्वादु व्यञ्जनों को ग्रहण करने का है।

परिव्राजकः अकाल्ये वर्तते लोभः।

परिव्राजक – वत्स! असमय में यह लोभ सर्वथा अनुचित है।

शाण्डिल्यः एदस्स *कारणादो तुवं मुण्डितोसि*[108]। (एतस्य कारणात् त्वं मुण्डितोऽसि)

शाण्डिल्य - इसीलिए तो तुम भी सिर मुड़ाये हो।

परिव्राजकः मा मैवम्।

महात्मभिः [109]सेवितं पूजितं द्विजैः
सुरासुराणामपि बुद्धिसंमतम्।
अवार्यमक्षोभ्यमचिन्त्यमव्ययं
महन्महा[110] योगफलं निषेव्यते।। 14 ।।

परिव्राजक – नहीं, नहीं! ऐसा तो नहीं है-

महात्माओं के द्वारा सेवित, द्विजों के द्वारा पूजित, सुरों और असुरों की भी बुद्धि द्वारा मान्य अनिवार्य, शान्त, अचिन्त्य, अविनाशी और महत्तरयोग के फल का सेवन या अनुभव मैं कर रहा हूँ।। 14 ।।

शाण्डिल्यः *भो ! भअवं! जोओ जो ओत्ति पव्वाजआ बहुअं मन्तअन्ति। को एसो जोओ णाम*[111]। (भो! भगवन्! योगो योग इति प्रव्राजका बहुकं मन्त्रयन्ते। क एष योगो नाम।)

शाण्डिल्य – भगवन्! परिव्राजकों के मुंह से हमेशा योग योग सुनता रहता हूँ। आखिर यह योग है क्या?

परिव्राजकः शृणु–

ज्ञानमूलं तपःसारं[112] सत्त्वस्थं द्वन्द्वनाशनम्।
मुक्तं द्वेषाच्च रागाच्च योग इत्यभिधीयते।। 15 ।।

परिव्राजक – सुनो– यह योग आत्मज्ञान का मूल है। तपः साधना का सार तत्त्व है। द्वन्द्वों का शमन करने वाला तथा शान्ति प्रदायक है। मनुष्य को यह राग एवं द्वेष की भावना से मुक्त रखता है।। 15 ।।

शाण्डिल्यः आहारप्पमादो सव्वप्पमादोत्तिमन्तअन्तस्स णमो भअवदो बुद्धस्स। [आहारप्रमादः सर्वप्रमाद इति मन्त्रयमाणाय नमो भगवते बुद्धाय]

शाण्डिल्य – आहार का प्रमाद या अनादर ही सबसे बड़ा अनादर है। इस प्रकार की शिक्षा देने वाले भगवान् बुद्ध को मैं नमन करता हूँ।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! किमेतत्।

परिव्राजक – शाण्डिल्य! यह क्या कह रहे हो।

शाण्डिल्यः भअवं। किं ण आणासि। पुढमं एव्व[113] अहं पादरसणलोहेण सक्कि असमणअं पव्वजिदोह्मि। (भगवन्! किं न जानासि! प्रथममेवाहं प्रातरशनलोभेन शाक्यश्रमणकं प्रव्रजितोऽस्मि।

शाण्डिल्य – भगवन्! क्या तुम नहीं जानते हो? सवेरे सवेरे भोजन पाने की लालसा से ही तो मैं पहले बौद्ध भिक्षु बना हूँ।

परिव्राजकः अस्ति किञ्चिदपि ज्ञातम्।

परिव्राजक – कुछ जानते भी हो कि ......।

शाण्डिल्यः *अत्थि, अत्थि। पभूदं अपि अत्थि*[14]। (अस्ति, अस्ति। प्रभूतमप्यस्ति)

शाण्डिल्य – है, है। पर्याप्त ज्ञात है।

परिव्राजकः भवतु, श्रोष्यामस्तावत्।

परिव्राजक – ठीक है। फिर तो कुछ सुनाओ।

शाण्डिल्य सुणादु भअवो अष्टौप्रकृतय, षोडश विकारा, आत्मा, पञ्च वायवः, त्रैगुण्यं, मनः, सञ्चरः प्रतिसञ्चरश्चेति। *एव्वं भअवदा जिणेण पिडअपुत्यएसु उत्त*[115] । (शृणोतु भगवान्: एवं भगवता जिनेन पिटकपुस्तकेषु उक्तम्।

शाण्डिल्य - भगवन् सुनें- आठ प्रकृति, सोलह विकार, आत्मा, पञ्चवायु, तीन गुण, मन, सञ्चर (सृष्टि), और प्रतिसञ्चर (प्रलय) आदि इस प्रकार पिटक पुस्तकों में बौद्ध सन्यासियों द्वारा उपदिष्ट है।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! सांख्यसमय एष न शाक्यसमयः।

परिव्राजक - शाण्डिल्य! यह तो सांख्य का सिद्धान्त है न कि शाक्य (बौद्ध) का।

शाण्डिल्यः बुभुक्खाए ओदणगदाए *चिन्ताए अण्णं चिन्तिदं मन्तिदं*[116] । दाणिं सुणादु भअवो (बुभुक्षया ओदनगतया चिन्तया अन्यच्चिन्तितं अन्यन्मन्त्रितम्। इदानीं शृणोतु भगवन्।)

पाणादिपादादो वेरमणी सिक्खापदं।
अदिण्णादाणादो वेरमणी सिक्खापदं।
अब्बह्मचअ्आदो वेरमणी सिक्खापदं।
मुधावादादो वेरमणी सिक्खापदं[117]।
विआलभोअणादो वेरमणी सिक्खापदं।।
अह्माणं बुद्धं, धम्मं, सङ्घं सरणं गच्छामि।
(प्राणातिपाताद्विरमणं शिक्षापदम्।
अदत्तादानाद्विरमणं शिक्षापदम्।
अब्रह्मचर्याद्विरमणं शिक्षापदम्।
मुधावादाद्विरमणं शिक्षापदम्।
विकालभोजनाद्विरमणं शिक्षापदम्।
अस्माकं बुद्धं धर्मं सङ्घं शरणं गच्छामि।)

शाण्डिल्य - भूख से त्रस्त भात खाने की चिन्ता के कारण सोचा कुछ और ही ओर कहा कुछ और। अभी आप सुनिए-

प्राणो के अतिपात से बचना शिक्षा का अर्थ है। अदत्त वस्तु को लेने से बचना शिक्षा का अर्थ है। अब्रह्मचर्य से बचना शिक्षा का अर्थ है। बकवास से बचना शिक्षा का अर्थ है। मध्याह्न के बाद भोजन से बचना शिक्षा का अर्थ है। अतएव, मुझे अपना बुद्ध धर्म व संघ ही अभिप्रेत है (या मैं उसी की शरण में जाता हूँ।)

परिव्राजकः शाण्डिल्य! स्वसमयमतिक्रम्य परसमयं वक्तुं नार्हति भवान्।

तमस्त्यक्त्वा रजो जित्वा सत्त्वस्थः सुसमाहितः[118]।
ध्यातुं शीघ्रं भवान् ध्यानमेतज्ज्ञानप्रयोजनम्[119]।।16।।

परिव्राजक - शाण्डिल्य अपने सिद्धान्त को छोड़कर समय का अपव्यय कर दूसरों के सिद्धान्त के संबंध में कुछ भी कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। अतः तमोगुण का परित्याग करके, रजोगुण पर विजय करके तथा सत्त्व गुण का अवलम्बन करते हुए शीघ्र ही ध्येय का ध्यान करने हेतु तत्पर हो जाओ। यही सब ज्ञान के प्रयोजन हैं।। 16 ।।

शाण्डिल्यः भअवो सुसमाहिदो जोअं चिन्तेदु। अहं सुसमाहिदो ओदणं चिन्तेमि[120] (भगवान् सुसमाहितो योगं चिन्तयतु। अहं सुसमाहित ओदनं चिन्तयामि।)

शाण्डिल्य - भगवन्! आप समाधि में रहकर योग की चिन्ता करें और मैं एक मन से भात की चिन्ता करता हूँ।

परिव्राजकः छिद्यतामेषा कथा।

सर्वं जगत्संक्षिप देहबन्धे
यथेन्द्रियाण्यात्मनि योजयित्वा।
ज्ञानेन सत्त्वं समुपाश्रय त्वं
देहात्मनात्मानमवेक्ष्य[121] कृत्स्नम्।। 17 ।।

परिव्राजक - अरे छोड़ो भी इस बकवास को। इस शरीर में ही सम्पूर्ण संसार को व आत्मा में इन्द्रियों को लगा कर (नियोजित

कर) देखो ज्ञान के द्वारा तुम सात्विक वृत्तियों का करो तथा देहरूपी आत्मा से सभी आत्माओं को देखो।।।7।।

(ततः प्रविशति गणिका चेट्यौ च)

गणिकाः हञ्जे। महुअरिए। महुअरिए[122]। कहिं कहिं रामिलओ (हञ्जे! मधुकरिके, मधुकरिके! कुत्र कुत्र रामिलकः।)

(गणिका व चेटी का प्रवेश)

गणिका – सखी मधुकरिके! रामिलक कहाँ है। कहाँ है वह।

चेटी – अज्जुए! अ अं आअच्छामित्ति भणिअणअरं एव्व पविट्ठो आवुत्तो (अज्जुके! आगच्छामीति भणित्वा नगरमेव प्रविष्ट आवुत्तः।)

चेटी – अज्जुका! 'अभी आता हूँ' यह कह कर वह नगर की ओर चला गया है।

गणिका – हञ्जे! किं णु खु भवे[123] (हञ्जे! किं णु खलु भवेत्।)

गणिका – तो फिर अब क्या होगा सखी!

चेटी – किमञ्ञं[124] गोट्ठिं तुवारेदुं। (किमन्यत् गोष्ठीं त्वरयितुम्।)

चेटी – गोष्ठी आयोजन में शीघ्रता करने के सिवा और क्या होगा?

गणिका – दाणिं[125] पि ण पअ्अत्ता गोट्ठी (इदानीमपि न पर्याप्ता गोष्ठी)

गणिका – यह गोष्ठी तो पर्याप्त नहीं है।

चेटी – सुट्ठु अज्जुआ भणादि। आसवो एव्व गोट्ठी, जो मत्तावेदि हस्सावेदि[126] लज्जाधीरं पि इत्थि[127] आजणं (सुष्ठु अज्जुका भणति। आसव एव गोष्ठी, यो मदयति, हासयति लज्जाधीरमपि स्त्रीजनम्।)

चेटी – अज्जुका ठीक कहती हैं। मदिरा ही तो गोष्ठी है। जो लज्जा– शील स्त्रियों को भी मदमस्त करे तथा हंसी से सराबोर कर दे।

गणिका – गच्छ, तुवारेहि णं। (गच्छ, त्वरयैनम्)

गणिका – जाओ। इसे शीघ्र करो

चेटी – अज्जुए! तह[128]। (अज्जुके तथा)। (निष्क्रान्ता[129])

चेटी – अज्जुका! ठीक है। (चली जाती है)

गणिका – हञ्जे! *परहुदिए! परहुदिए! कहिं, कहिं*[130] उवविसामो। (हञ्जे! परभृतिके! परभृतिके। कुत्र कुत्र उपविशावः)

गणिका – सखी परभृतिके! परभृतिके। कहाँ कहाँ बैठा जाय।

चेटी – अज्जुए! एदस्सिं कुसुमिदसहआरतिल अमण्डिदे सिलापट्टए *मुहुत्तअं उवविसिअ एक्कं वत्थुअं*[131] गाअदु अज्जुआ (अज्जुके! एतस्मिन् कुसुमितसहकारतिलकमण्डिते शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविश्य एकं वस्तुकं गायतु अज्जुका)

चेटी – अज्जुका! मैं सोचती हूँ कि कुसुमितसहकार के तिलक से मण्डित इस शिलापट्ट पर मुहूर्त भर बैठ कर एक गीत गाओ।

गणिका – *एव्वं होदु*[132] (एवं भवतु) (उभे उपविश्य गायतः)

> परभृतमधुकरनाद–
>
> ज्याघोषः काम एष उद्याने।
>
> तिष्ठति सहकारशरो
>
> मुह्यति नूनं मनोऽपि मुनेः।। 18 ।।

गणिका – ऐसा ही हो। (दोनों बैठकर गाती हैं)

इस उद्यान में कामदेव, कोयल की कूक एवं भौंरों के गुंजनरूप धनुष के टंकार एवं आम्रमंजरी का बाण लेकर मानों मुनियों के मन को भी मोह रहा है (फिर हम गृहस्थों की बात ही क्या)।। 18 ।।

शाण्डिल्यः – (आकर्ण्य)[133] *अए! कोइलरवो (पुनर्विभाव्य) ण खु अअं कोइलरवो*[134]। पाअसे *धिदप्पक्खित्तं विअ अइमहुरो*[135] कोवि गीअरवो। होदु *पेक्खामि दाव। (विलोक्य)*[136] अविहा! *का णु खु एसा*[137] तरुणी दस्सणीआ अणवरोहेण अलंकारेण अलंकिदा इमस्स उअ्आणस्स[138] अलंकारो विअ उवविट्ठा[139]

(अये! कोकिलरव.। न खल्वय कोकिलरव.। *पायसे प्रक्षिप्तमिवातिमधुरः कोऽपि गीतरवः*[140]। भवतु पश्यामि *तावत्। अविधा! का नु खल्वेषा तरुणी दर्शनीया*[141]ऽनवरोहेणालंकारेणालंकृतास्योद्यानस्यालंकार इवोपविष्टा।)

शाण्डिल्य - अरे। यह कोकिल का सा कलरव कहाँ हो रहा है। नहीं नहीं। यह कोकिल का कलरव नहीं है। यह तो घृतमिश्रित खीर की तरह किसी मधुर गीत का स्वर है। अच्छी बात है। थोड़ा देखता हूँ। अय....है। यह तो कोई दर्शनीय तरुणी है, जो कि बिना अलंकरण के भी उद्यान को अलंकृत सा कर रही है।

चेटी - अज्जुए! (अज्जुके!)

चेटी- अज्जुका!

शाण्डिल्यः अइ! गणिआ खु इयं। धञ्जा[142] खु साधणा[143] (अयि! गणिका खल्वियम्। धन्या खलु साधना)।

शाण्डिल्य - अरे! यह तो गणिका है। हमारी साधना धन्य हुयी।

चेटी - दुदीअं पि[144] एक्कं वत्थुअं[145] गाअदु अज्जुआ (द्वितीयमप्येकं वस्तुकं गायत्वज्जुका)।

चेटी - अज्जुका! एक दूसरा गीत भी (कृपा कर) गा दीजिए।

गणिका - तह[146]! (तथा)। (पुनर्गायति)

मधुमासजातदर्पः
कन्दर्पः कामिनीकटाक्षसखः।
अपि योगिनामिह मनो
विध्यति फुल्लैरशोकशरैः।। 19 ।।

गणिका - ठीक है। (पुनः गाती है)- मधुमास के कारण दर्प पाकर कामिनी कटाक्ष रूप मित्र से युक्त यह कन्दर्प विकसित अशोक पुष्परूपी शरों से मानों योगियों के मन को भी बेध रहा है।। 19 ।।

शाण्डिल्यः अइमहुरं पस्सवदि कण्ठादो। सुणादु भअवो(अति-मधुरं प्रस्रवति कण्ठात्। शृणोतु भगवान्!)

शाण्डिल्य – भगवन्! जरा सुनें! कितना मधुर कण्ठ है।

परिव्राजकः शब्दप्रयोजनं श्रोत्रम्। प्रसङ्गमत्र न गच्छामि।

परिव्राजक – शब्द सुनने के लिए कान हैं। प्रसङ्ग हेतु जाना उ
नहीं है।

शाण्डिल्यः प्रसङ्ग पि[147] संपदं करेसि, जइ से कारिसापणा
(प्रसङ्गमपि साम्प्रतं करिष्यसि, यदि ते कार्षापणं भवेत्)।

शाण्डिल्य – प्रसङ्ग भी इस समय तुम करते यदि तुम्हारे पा
चवन्नी भी होती।

परिव्राजकः आ! युक्तव्यवहारी भव[148]

परिव्राजक – अरे! उचित आचरण करो।

शाण्डिल्यः मा कुप्प! अजुत्तं पव्वाजआणं कुविदुं[149] (मा कु
अयुक्तं प्रव्राजकानां कोपितुम्)।

शाण्डिल्य – क्रोध न करें। संन्यासियों के लिए क्रोध वर्जित

परिव्राजकः एष न व्यवहरामि।

परिव्राजक – मैं तुम्हारे साथ बात नहीं करता।

शाण्डिल्यः दाणिं पण्डिदोसि (इदानीं पण्डितोऽसि)।

शाण्डिल्य – तब तो आप पण्डित हैं।

(ततः प्रविशति यमपुरुषः)

यमपुरुषः एष भोः।

भूतानि यो हरति कर्महतानि लोके
यः प्राणिनां सुकृतदुष्कृतकर्मसाक्षी
उक्तोऽस्मि[150] तेन शमनेन यमेन देहे
प्राणान् प्रजावधिविधौ विनियोजयेति।। 20

(यमपुरुष का प्रवेश)

यमपुरुष – अरे कोई है– इस संसार में, प्रारब्ध कर्मों के क्षीण
जाने पर जो प्राणियों के शरीर से प्राणों का हरण करता है

———— हिन्दी अनुवाद

जो उसके सुकृत एवं दुष्कृत कर्मों का साक्षी है उस शमनकारी (प्राणहर) यम का आदेश है – 'समय आने पर जीव के प्राणों का हरण करो'।।20।।

तस्मात् नानाराष्ट्रनदीवनाचलवर्ती भूमिं समालोकयन्
मेघैस्तोयभरावनम्रनिचयैः प्रच्छाद्यमानो भृशम्[151]।
तीर्त्वा चारणसिद्धकिन्नरयुतं वातोद्धताभ्रं नभः
संप्राप्तोऽस्मि[152] यमेन यत्र विहितस्तत्कौदिवाहं पुरम्।।21।।

इसलिए– अनेक राष्ट्र, नदी, वन तथा पहाड़ से युक्त इस धरती का दर्शन करता हुआ लबालब जल से भरे हुए बादलों से ढका मैं चारण सिद्ध किन्नर आदि से युक्त प्रचण्ड वात से घिरे हुए आकाश को पार करके यम के द्वारा यहाँ भेजा गया हूँ।। 21 ।।

तत् क्व नु खलु सा। अये[153] इयं सा।
सपल्लवै[154]स्तप्तसुवर्णवर्णै–
रशोकपुष्पस्तबकैर्मनोज्ञैः।
अन्तर्हिता भाति वराङ्गनैषा
सन्ध्याभ्रजालैरिव चन्द्रलेखा।। 22 ।।

भवतु! अस्त्यस्याः[155] कर्मावशेषः। मुहूर्तं स्थित्वा प्राणान् हरामि।

तो वह कहाँ? अरे! यह तो वही है (जिस हेतु मैं भेजा गया हूँ) – पल्लवों से युक्त तपे हुए सोने के रंग के पुष्पगुच्छों वाला अशोक का यह वृक्ष अत्यंत मनोज्ञ है। इसके मध्य स्थित यह वराङ्गना (गणिका) मेघमण्डित सान्ध्यकालीन चन्द्रलेखा की भाँति शोभित हो रही है।। 22 ।।

बहुत अच्छा! अभी इसका भोग कुछ शेष है। अतएव थोड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त ही इसके प्राणों का हरण करना उचित होगा।

चेटी – अज्जुए! दस्सणी ओ खु एसो असोअकिसलओ। णं गह्णामि। (अज्जुके! दर्शनीयः खल्वेषोऽशोककिसलयः, एनं गृह्णामि।)

चेटी – अज्जुके! अशोक के ये पल्लव बड़े ही दर्शनीय है। मैं इन्हें तोड़ती हूँ।

गणिका – *मा मा एव्वं। अहं एव्व गह्णामि।*[156] *(मा मैवम्। अहमेव गृह्णामि)।*

गणिका – नहीं नहीं। तुम ऐसा नहीं कर सकती। इन्हें मैं तोडूँगी।

यमपुरुषः *अयं स देशकालः*[157]। यावत् सर्पत्व[158]मुपगम्याशोक शाखायां स्थित्वास्याः[159] प्रणान् हरामि। (तथा कुर्वन्)[160] अयमिदानीम्

श्यामां प्रसन्नवदनां मधुरप्रलापां[161]
मत्तां[162] विशालजघनां वरचन्दनार्द्राम्।
रक्तोत्पलाभनयनां नयनाभिरामां
क्षिप्रं नयामि यमसादनमेव बालाम्।। 23 ।।

(गणिका पल्लवापचयं करोति)

यमपुरुष – बस बस, यही उचित अवसर एवं स्थान है। तब तक मैं अशोक शाखाओं के मध्य सर्प बन कर इसका प्राण हरण करता हूँ। (वैसा ही आचरण करता हुआ) अरे! यह तो– ताजे चन्दन की सुगन्ध से सुवासित, विशाल जघनों वाली यह सलोनी तरुणी प्रसन्नानना व मधुरभाषिणी है। इसके ये रक्त–कमल के सदृश नयन अत्यंत सुखदायी हैं। शीघ्र ही इस बाला को अब मैं यम के समीप ले चलता हूँ।। 23 ।।

(गणिका वृक्ष के पत्तों को तोड़ती है)

यमपुरुषः अयं संदंशकालः। (तथा करोति)

यमपुरुष – बस बस! यही उचित अवसर है जब कि मैं इसे डँस सकता हूँ। (वैसा ही करता है अर्थात् काटता है)।

गणिका – हं! केण वि दट्ठह्मि। (हम्। केनापि दष्टास्मि)

गणिका – आह! मुझको तो किसी ने काट लिया।

चेटी – अम्महे। एसो सो असो अकोडरन्तरिदो बालो[163]। (अम्महे! एष सोऽशोककोटरान्तरितो व्यालः।)

चेटी - अरे! इस अशोक वृक्ष के कोटर में तो सांप है।

गणिका - हं! बालो[164]। (हम्! व्यालः)। (इति पतिता)

गणिका - क्या? सांप..? (और वह गिर पड़ती है)

शाण्डिल्यः (उपगम्य) भोदि! किं एदं। (भवति! किमेतत्)

शाण्डिल्य - (समीप पहुँचकर) देवि! यह क्या हुआ?

चेटी - अअ्अ[165]। एसा अज्जुआ बालेण[166] दट्ठा (आर्य! एषा अज्जुका व्यालेन दष्टा)।

चेटी - आर्य! अज्जुका को तो साँप ने डस लिया है।

शाण्डिल्यः अविहा! भो भअवं! एसा गणिआ दारिआ बालेण[167] दट्ठा। (अविधा। भो भगवन्! एषा गणिका दारिका व्यालेन दष्टा)

शाण्डिल्य - हाय! हाय! भगवन्! इस बेचारी गणिका को तो साँप ने डस लिया।

परिव्राजकः क्षीणेनास्याः कर्मणा भवितव्यम्। कुतः,

> **स्वकर्म भोक्तुं जायन्ते प्रायेणैव हि जन्तवः।**
> **क्षीणे कर्मणि चान्यत्र पुनर्गच्छन्ति देहिनः।।24।।**

परिव्राजक - इसके कर्मों का भोग समाप्त हो गया। भोगों के समाप्त होने पर ही ऐसा होता है– क्योंकि प्रायः जीवों का तो जन्म ही अपने कर्मों का भोग भोगने हेतु हुआ करता है। कर्मों का भोग समाप्त होने पर शरीर छोड़ कर यह आत्मा अन्यत्र (दूसरे शरीर में) गमन कर जाती है।। 24 ।।

चेटी - अज्जुए[168]। किं बाधेइ (अज्जुके! किं बाधते)

चेटी - क्या कष्ट है अज्जुका! कुछ तो बताइए।

गणिका - सीददि विअ मे सरीरं, *उब्भमन्ती विअ मे दिट्ठी, विअ मे हिअअं, विअ मे पाणा सद्दु*

गणिका – मेरा शरीर शिथिल हो रहा है, मेरी आँखों के सामने अंधेरा सा छा रहा है। मेरा हृदय व्याकुल सा हो रहा है। मेरे प्राण निकल से रहे हैं। मुझे सोने की इच्छा हो रही है।

चेटी – सुहं सअदु अज्जुआ। [सुखं शेतामज्जुका]

चेटी – अज्जुका सुख से सोयें (आशीर्वादात्मक)

गणिका – अत्तं[170] अभिवादेहि [मातरमभिवादय]

गणिका – माता से मेरा अभिवादन कहना।

चेटी – *मा मा एव्व*[171]। सअं एव्व *अत्तं अभिवादेहि*[172] (मा मैवम्। स्वयमेव मातरं अभिवादयिष्यसि)

चेटी – नहीं नहीं। ऐसा न कहें। आप स्वयं ही माता को अभिवादन करेंगी।

गणिका – रामिलअं आलिङ्गेहि[173] (रामिलकमालिङ्ग)।

गणिका – रामिलक को अलिङ्गन करना।

चेटी – हा! हदा खु अज्जुआ (हा! हता खल्वज्जुका)।

चेटी – हाय! हाय अज्जुका तो हमें छोड़ कर चली गयीं।

यमपुरुषः हन्त! हृताः प्राणाः। एष भोः।

गंगामुत्तीर्य विन्ध्यं शुभसलिलवहां नर्मदामेष सह्यं
गोलेयीं कृष्णवेण्णां पशुपतिभवनं सुप्रयोगां च काञ्चीम्।
कावेरीं ताम्रपर्णीमथ मलयगिरिं सागरं लंघयित्वा
वेगादुत्तीर्य लङ्कां पवनसमगतिः प्राप्तवान् धर्मदेशम्।। 25 ।

अयं विशालशाखो वटवृक्षः। अत्रासीनं चित्रगुप्तं नयामि (निष्क्रान्तः)

यमपुरुष – प्राणों का हरण कर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। और हाँ– अब तो पवन की भांति तीव्र गति के साथ गंगा को पार कर शुभ्रसलिला नर्मदा के जल से पवित्र विन्ध्य की सह्य पर्वत श्रेणियों को लांघ कर गोदावरी एवं कृष्णा नदी के उस पार पशुपतिनाथ के भवन से युक्त काञ्ची (काञ्जीवरम्) नगरी में प्रवेश

करूँगा। यहाँ से होता हुआ कावेरी व ताम्रपर्णी नदी को पार कर मलयाचल के भी उस पार सागर को लांघ कर आशुगति के साथ लंका के भी उस पार स्थित धर्म देश (धर्मराज की नगरी) अर्थात् यम लोक को पहुँचता हूँ।। 25 ।।

विशालशाखाओं वाले इस वटवृक्ष के नीचे स्थित चित्रगुप्त के पास चलकर इसके प्राणों को उन्हें सौंपते हैं। (जाता है)

चेटी – हा! अज्जुए! (हा! अज्जुके।)

चेटी – हा....अज्जुका।

शाण्डिल्यः भअवं! परित्तजदि खु[174] एसा गणिआ दारिआ अत्तणो पाणाणि। (भगवन्! परित्यजति खल्वेषा गणिका दारिका आत्मनः प्राणान्)

शाण्डिल्य – भगवन्! लगता है यह बेचारी गणिका अब अपने प्राणों को त्याग रही है।

परिव्राजकः मूर्ख! परमप्रियाः[175] प्राणिनां प्राणाः। प्राणैस्तु[176] परित्यज्यते शरीरमिति वक्तव्यम्।

परिव्राजक – मूर्ख! प्राणियों को प्राण परम प्रिय होते हैं । अतएव ऐसा कहना उचित नहीं है। अपि तु यह कहना चाहिए कि प्राण इसके शरीर का परित्याग कर रहे हैं।

शाण्डिल्यः आ! अपेहि![177] अअरूण! णिस्सिणेह! कक्कसहिअअ! दुठबुद्ध भिण्णचरित्त! कूरसअड! मुहामुण्ड[178]! (आ! अपेहि! अकरुण! निःस्नेह! कर्कशहृदय! दुष्टबुद्धे! भिन्नचारित्र! क्रूर! शठ! मुधामुण्ड!)

शाण्डिल्य – आः दूर होओ। अरे निर्दयी। क्रूरहृदय! दुष्टबुद्धि। विषमचरित्र! आचरणहीन! व्यर्थ ही सरमुड़ा कर विचरण करने वाले। तुम्हारे समान अधम शायद ही कोई हो।

परिव्राजकः किमभिप्रेतं भवतः।

परिव्राजक – तुम्हारा आशय क्या है?

शाण्डिल्य णामट्ठसद[179] दे पूरइस्स (........ ते पूरयिष्यामि)

शाण्डिल्य – तुम्हारे इस ढोंगी आचरण के एक सौ आठ नाम मैं अभी ही गिनाऊँगा।

परिव्राजकः छन्दतः

परिव्राजक – ठीक है। जो इच्छा हो करो।

शाण्डिल्यः भो! भअवं! दुक्खिदोह्मि (भो भगवन्! दुक्खितोस्मि)

शाण्डिल्य – भगवन्! मैं वस्तुतः बहुत दुःखी हूँ।

परिव्राजकः किमर्थम्।

परिव्राजक – क्यों...

शाण्डिल्यः अह्माणं सअणो एसा[180] (अस्माकं स्वजन एषा)

शाण्डिल्य – क्योंकि यह हमारी ही स्वजन जो ठहरी। (अर्थात् यह भी हमारी ही तरह जो है)।

परिव्राजकः कथं स्वजनो नाम।

परिव्राजक – यह तुम्हारी स्वजन कैसे है?

शाण्डिल्यः एसा[181] पव्वाजआ विअ ण कोच्चि[182] सिणेहं करोदि [183] (एषा परिव्राजका इव न क्वचित्स्नेहं करोति)।

शाण्डिल्य – संन्यासियों की ही भांति यह भी तो किसी से स्नेह नहीं करती।

परिव्राजकः दुर्लभस्नेहोऽपि[184] भूयोऽर्थ[185]योगात् स्निह्यतीति[186] युक्तम्। कुतः,

> ये निर्ममंमोक्षमनुप्रपन्ना
>
> शास्त्रोपदिष्टेन पथा प्रयान्ति।
>
> तेषामपि प्रीतिपराङ्मुखानां
>
> गुणेष्वपेक्षां हृदयं करोति।। 26 ।।

परिव्राजक – इसका स्नेह दुर्लभ तो है परन्तु फिर भी अर्थ के निमित्त इसका स्नेह उचित ही है। क्योंकि–

जो लोग ममता रहित मोक्ष के भक्त है शास्त्रोपदिष्ट मार्ग का अनुगमन करते हैं, उनका प्रेम से रहित हृदय भी गुणों की अपेक्षा ही रखता है।। 26 ।।

शाण्डिल्यः भो! भअवं! ण सक्कुणोमि अत्ताणं धारेदुं। उपसप्पिअ रोदामि (भो भगवन्! न शक्नोम्यात्मानं धारयितुम्। उपसृत्य रोदिमि)

शाण्डिल्य – भगवन्! अब मैं अपने को जीवित नहीं रख पा रहा हूँ। बस यहीं इसीके समीप ही बैठकर रोता हूँ।

परिव्राजकः न खलु न खलु गन्तव्यम्।

परिव्राजक – नहीं! नहीं! वहाँ जाना उचित नहीं है। ऐसा न करो।

शाण्डिल्यः मा कुप्प! अजुत्तं पव्वाज आणं कुविदुं[187] (उपसृत्य) हा अज्जुए! हा पिअसंपण्णे! हा महुर गाइणि[188] (मा कुप्यः। अयुक्तं प्रव्राजकानां कोपितुम्। हा अज्जुके! हा प्रियसंपन्ने! हा मधुरगायिनि)!

शाण्डिल्य – कोप न करें। संन्यासियों के लिए कोप करना उचित नहीं होता। (समीप जाकर) हा अज्जुका! हा प्रियसम्पन्ना! हा मधुरगायिनी!

चेटी – अअ्अ[189]! किं एदं (आर्य किमेतत्)।

चेटी – आर्य! यह क्या कर रहे हैं।

शाण्डिल्यः भोदि! सिणेहो (भवति! स्नेहः)।

शाण्डिल्य – देवि! स्नेहवश मैं विवश हूँ।

चेटी – (आत्मगतं) जुज्जइ सव्वाणुकंपी साहुजणो णाम (युज्यते सर्वानुकंपी साधुजनो नाम)।

चेटी – (आत्मगत) इनका यह वर्ताव सहृदय साधुजनों के अनुकूल ही है।

शाण्डिल्यः भोदि! आमिस्सामि दाव णं (भवति! आमृशामि तावदेनाम्)

शाण्डिल्य देवि। तब तक मै इनको स्पर्श से राहत देता हूँ

चेटी – पभवदि अअ्ओ[190] (प्रभवति आर्यः)

चेटी – आयें आर्य! आयें।

शाण्डिल्यः हा! भोदि[191] (हा!भवति)। (पादौ स्पृशति)

शाण्डिल्य – हा देवि! (चरणों को स्पर्श करता है)

चेटी – मा मा पादाणि आमिस्सिदुं[192] (मा मा पादावामर्ष्टुम्)।

चेटी – नहीं! नहीं। आपको पैर नहीं स्पर्श करना चाहिए।

शाण्डिल्यः आ! आउलह्मि[193]। सीसं पादं पिण आणामि[194]। एदाणि तालफलपीणाणि कालेअ चन्दणाणुलित्ताणि अणहोमुहाणि[195] तत्तहोदीए थणाणि[196] जीवन्तीए[197] ण आसादिदाणि [आः! आकुलितोऽस्मि। शीर्षं पादमपि न जानामि। एतौ तालफलपीनौ कालेयचन्दनानुलिप्ताव – धोमुखौ तत्र भवत्याः स्तनौ जीवन्त्या नासादितौ]

शाण्डिल्य – आह! मैं कुछ अधिक ही व्याकुल हो गया हूँ। सिर व पैर का ज्ञान ही न रहा। तालफल के तुल्य विशाल एवं कठोर, कालागुरु व चन्दन के लेप से लिप्त इस देवि के इन दोनों उत्तुंग स्तनों का आस्वाद इसके जीवन काल में तो नहीं पा सका।

चेटी – (आत्मगतं) एव्वं दाव करिस्सं। (प्रकाशं) *अअअ! अज्जुअं मुहुत्तअं पडिवालेहि*[198]। जाव अत्तं आणेमि (एवं तावत् करिष्यामि। आर्य! अज्जुकां मुहूर्तकं परिपालय। यावन्मात रमानयामि)।

चेटी – तो फिर ऐसा ही करते हैं। आर्य! कुछ क्षणों तक आप अज्जुका की देख रेख करें तब तक मैं माता को लेकर आती हूँ।

शाण्डिल्यः गच्छ सिग्घं। *अहं अत्ता*[199] अणत्ताणं [गच्छ शीघ्रम्। अहं मातामातॄणाम्]

शाण्डिल्य – आप शीघ्र जायें। मैं मातृहीनों की माता हूँ।

चेटी – (   ) साणुक्कोसो[200] एसो ब्राह्मणो अज्जुअ ण परिच्च अदि[201]। जाव गच्छामि। (निष्क्रान्ता) (सानुक्रोश एष ब्राह्मणोऽज्जुकां न परित्यजति। यावत् गच्छामि)

चेटी – (स्वगत) दया से अभिभूत यह ब्राह्मण अज्जुका का निश्चित ही ध्यान रक्खेगा तथा इन्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाएगा अतएव तब तक मैं माता को लेने जाती हूँ। (जाती है)

शाण्डिल्यः गआ[202] एसा। सेरं रोदामि। हा अज्जुए! हा महुरगाइणि (गतैषा स्वैरं रोदिमि। हा अज्जुके! हा मधुरगायिनि)।

शाण्डिल्य – यह तो चली गयी। अब हम खुल कर विलाप कर सकते हैं। (रोता है) हा अज्जुका! हा मधुरगायिनि।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! न कर्तव्यमेतत्।

परिव्राजक – शाण्डिल्य! ऐसा नहीं करना चाहिए तुम्हें।

शाण्डिल्यः आ! अपेहि[203] णिस्सिणेह मं पि तुमं विअ तक्केसि (आ! अपेहि निःस्नेह! मामपि त्वामिव तर्कयसि)।

शाण्डिल्य – आह! निर्दयी! दूर हटो। मुझे भी तुम अपनी ही तरह समझते हो।

परिव्राजकः आगच्छ वत्स! अधीष्व तावत्।

परिव्राजक – आओ वत्स। पढ़ो।

शाण्डिल्यः भअवं! किं चिइच्छी[204]अदु दाव एसा अणाहा तवस्सिणी (भगवन्! किं चिकित्स्यतां तावदेषा अनाथा तपस्विनी)।

शाण्डिल्य – भगवन्। इस अनाथ तपस्विनी की फिर तो आप ही कुछ चिकित्सा करें।

परिव्राजकः किमौषधशास्त्रं भवतः।

परिव्राजक – क्या तुम औषधशास्त्र जानते हो।

शाण्डिल्यः अघं दे जोअस्स फलं (अघं ते योगस्य फलम्)।

शाण्डिल्य – फिर तो आप के योग का फल पापकर है।

परिव्राजक- (..... .....) एष खलु तपस्वी ....
आश्रमापवाद[205] न जानाति। किञ्चिच्छ्रुतं महेश्वरादिभिर्योगाचार्यैः[206] शिष्यानुक्रोशः संगं न बाधत इति। तदस्य प्रत्ययोत्पादनं करिष्यामीदृशो[207] योग इति। अस्या *गणिकायाः शरीरे*[208]आत्मानं योजयामि[209]। (योगेनाविष्टः)

परिव्राजक – (मन में ही) यह तपस्वी निश्चित ही कर्त्तव्य की अज्ञानतावश आश्रम के अपवाद को नहीं समझ रहा है। माहेश्वर आदि योगाचार्यों से कुछ–कुछ सुना करते थे कि शिष्यों का अनुक्रोश संगति में बाधक नहीं होता। अतएव इसको विश्वास दिलाता हूँ कि योग क्या वस्तु है। इस गणिका के शरीर में अपनी आत्मा का प्रवेश कराता हूँ। (योग से आविष्ट होने के उपरान्त)

गणिका – (उत्थाय) शाण्डिल्य! शाण्डिल्य!

गणिका – (उठकर) शाण्डिल्य! शाण्डिल्य!

शाण्डिल्यः (सहर्षं) अविहा[210]! पच्चा अदप्पाणा खु एसा। भोदि! अअह्मि (अविधा! प्रत्यागतप्राणा खल्वेषा। भवति! अयमस्मि।

शाण्डिल्य – (हर्ष से) आश्चर्य है। इसके प्राण तो वापस आ गए हैं। भगवति! मैं तो तुम्हारे पास ही हूँ।

गणिका – अप्रक्षालितपाणिभ्यां मा स्प्राक्षीः।

गणिका – सावधान! बिना हाथ पैर धोए मुझे मत छूना।

शाण्डिल्यः *अविहा! अदिचोक्खिणी* [211] खु इयं (अविधा! अतिचौक्षिणी खल्वियम्)।

शाण्डिल्य – अरे! यह तो निश्चित रूप से अत्यंत पवित्र हो गयी है।

गणिका – एहि वत्स! अधीष्व तावत्।

गणिका – आओ वत्स। कुछ अध्ययन करो।

शाण्डिल्यः इह वि अज्झअणं। भअवन्तं एव्व उवसप्पामि। (उपसृत्य) भो! भअवं! अइ मुदो[212] भअवो। हा वाआलअ[213]! हा अदिजोअवित्तअ[214]! हा उवज्झाअ!हा एव्व[215]बहु जाणन्तोवि

मरन्ति[216] [..   । भो भगवन्।
अपि मृतो भगवन्! हा वाचालक! हा अतियोगवित्तक! हा उपाध्याय। हा एवं बहु जानन्तोऽपि म्रियन्ते]

(ततः प्रविशति माता चेटी च)

शाण्डिल्य – अरे! यहाँ भी अध्ययन? तब तो भगवन् (परिव्राजक) के ही समीप चलता हूँ। (समीप जाकर) भगवन्। भगवन्! अरे! लगता है भगवन् का तो निधन हो गया। हा वाचालक! हा परम योग के धनी (जानकार)! हा उपाध्याय! हाय! क्या इतना सब जानकर भी आप मृत्यु को प्राप्त हो गये ?

(माता और चेटी का प्रवेश)

चेटी – एदु एदु अत्ता (एत्वेतु माता)।

चेटी – आइए आइए माँ जी।

माता – कहिं कहिं[217] मे दारिआ (कुत्र कुत्र मे दारिका)।

माता – कहाँ है। कहाँ है मेर पुत्री?

चेटी – एसा अज्जुआ उअ्आणे[218] बालेण दट्ठा चिट्ठइ (एषा अजुका उद्याने व्यालेन दष्टा तिष्ठति)।

चेटी – अज्जुका यहाँ है। उद्यान में इनको साँप ने काट लिया है।

माता – हा! हदह्मि मन्दभाआ (हा! हतास्मि मन्दभागा)।

माता – हाय! मैं अभागी तो मारी गयी।

चेटी – अस्ससदु! अस्ससदु[219] अत्ता। एसा अज्जुआ सत्था चिट्ठइ[220] (आश्वसितु! आश्वसितु माता। एषाज्जुका स्वस्था तिष्ठति)

चेटी – माता धैर्य धारण करें! धैर्य धारण करें। अज्जुका तो स्वस्थ बैठी हैं।

माता – णं पइदित्था जेह। (उपगम्य) जादे[221]! वसन्तसेणे! किं एदं (ननु प्रकृतिस्था यथा। पुत्रि वसन्तसेने किमेतत्)

माता – यह तो वस्तुतः ही स्वस्थ लग रही है। (समीप जाकर) पुत्री वसन्तसेने! क्या हुआ?

गणिका – वृषलवृद्धे! मा स्प्राक्षीः।

गणिका – अरी बूढ़ी शूद्री! मुझे छूना मत।

माता – हद्धि! किं एदं (हा धिक्! किमेतत्)

माता – हाय हाय! छिः (धिक्कार है)! यह क्या हो गया।

चेटी – अच्चारूढो से[222] विसवेओ (अत्यारूढोऽस्या विषवेगाः)

चेटी – ऐसा लगता है कि विष का प्रभाव कुछ अधिक ही हो गया है

माता – गच्छ सिग्घं, वेज्जं आणेहि (गच्छ शीघ्रं, वैद्यमानय)

माता – शीघ्र जाओ और वैद्य को बुला कर लाओ।

चेटी – अत्ते! तह[223] (मातः! तथा)। (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति रामिलकश्चेटी च)

चेटी – हाँ माता। ऐसा ही करते हैं। (जाती है)

(रामिलक व चेटी का प्रवेश)

चेटी – एदु एदु[224] आवुत्तो। आवुत्तं अपेक्खन्ती संतप्पदि[225] अज्जुआ (एत्वेत्वावुत्तः। आवुत्तमपश्यन्ती संतप्यत्यज्जुका)।

चेटी – आइए आइए! जीजा श्री। आप को नहीं देखने से अज्जुक का संताप और बढ़ जाता है।

रामिलकः – इच्छामि तावदस्या[226]
कलमधुरवचो मुखं विशालाक्ष्याः।
मधुपव्रतोऽभिपातुं
विकसितमिव कोमलं कमलम्।। 27 ।।

(उपेत्य)

कथं मां दृष्ट्वा परावृत्तमुखी स्थिता। (*वस्त्रान्तं गृह्णन्*[227])

एतन्निवर्तय सुगात्रि मुखारविन्द-
मीषत्तरङ्गपरिवृत्तमिवारविन्दम्।
प्रीणाति नाम तव वक्त्रमसर्वदृष्ट-
मल्पाल्पपीतमिव पाणिपुटेन तोयम्।। 28 ।।

रामिलक – मुझे तो फिर इसको पाने की कामना हो रही है मधुप की तरह मुझे भी विकसित होते कोमल कमल के रस को पीने की इच्छा हो रही है। अतएव इस विशालाक्षी के सुन्दर व मधुर वाणी से युक्त वदन को ...।। 27 ।।

(समीप जाकर) मुझको देखते ही दूसरी ओर मुँह फेर कर कैसे बैठ गयी हो (आँचल पकड़ते हुए)– हे सुगात्रि! छोटी तरंग से पीठ (पीछे) की ओर गए हुये अरविन्द की तरह अपना मुख थोड़ा मेरी ओर तो घुमाओ। तुम्हारा यह सुन्दर चेहरा कम ही लोग देख पाए हैं। अतः अंजुरी से थोड़ा थोड़ा पिए हुए पानी की तरह ही यह मुझे आनन्द दे रहा है।। 28 ।।

गणिका भोस्तामिस्र! मुच्यतां मम वस्त्रान्तः।

गणिका – अरे मोहाक्रान्त। मेरा आँचल तो छोड़ो।

रामिलकः भवति! किमिदम्।

रामिलक – देवि। यह क्या कह रही हैं।

माता[228] – जदप्पहुदि बालेण दट्ठा तदप्पहुदि असंबद्धाणि मन्तेदि[229] (यदाप्रभृति व्यालेन दष्टा तदाप्रभृत्यसम्बद्धानि मन्त्रयते)

माता – जब से इसे सर्प ने काटा है तभी से यह इस प्रकार की भटकी-भटकी बातें कर रही है।

रामिलकः एवम्

व्यक्तमस्या गतं चेतस्ततश्शून्ये तपस्विनी।

शरीरेऽन्येन[230] केनापि सत्त्वयुक्तेन धर्षिता।।29।।

(प्रविश्य वैद्यश्चेटी च)

रामिलक – ओह...। यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि पहले की इसकी चेतना चली गयी है तत्पश्चात् इस निर्जन में इस तपस्विनी के निश्चेष्ट शरीर में किसी अन्य सत्त्व की आत्मा ने प्रवेश कर लिया है।। 29 ।।

(वैद्य व चेटी प्रवेश करके)

चेटी – एदु एदु अज्ओ[231] (एत्वेत्वार्यः)।

चेटी – आइए आर्य! आइए।

वैद्यः – कहिं सा (कुत्र सा)।

वैद्य – वह कहाँ है

चेटी – *एसा खु अज्जुआ सत्था ठिदा*[232] (एषा खल्वज्जुका स्वस्था स्थिता)।

चेटी – अरे! अज्जुका तो बिल्कुल स्वस्थ बैठी हैं।

वैद्यः धरिसिदा खु महासप्पेण खादिदा भवे[233] (धर्षिता खलु महासर्पेण खादिता भवेत्)।

वैद्य – ऐसा लगता है कि यह किसी विशेष प्रकार के सर्प के काटने से आक्रान्त है।

चेटी – कहं अज्ओ[234] जाणादि (कथमार्यो जानाति)

चेटी – आर्य ने कैसे जान लिया।

वैद्यः महन्तं विआरं करोदिति[235]। आणेहि *अव्वारंभाणि जाव आरंभिस्सं विसतन्तं*[236](महन्तं विकारं करोतीति। आनय सर्वारम्भान्, यावदारम्भे विषतन्त्रम्)।

(उपविश्य मण्डलं रचयित्वा)

ुण्डलकुडिलगामिणि! मण्डलं पविस[237] मण्डलं[238] वासुइपुत्त! चिट्ठ चिट्ठ। शू, शू। जाव[239] सिरावेहं करिस्सं। कहिं कुठारिआ (कुण्डलकुटिलगामिनि! मण्डलं प्रविश मण्डलम्! वासुकिपुत्र! तिष्ठ तिष्ठ! शू शू। यावच्छिरावेधं करिष्यामि। कुत्र कुठारिका)।

वैद्य – क्योंकि इसका विकार कुछ विशिष्ट व गम्भीर सा लगता है। जब तक हम विष-निवारण हेतु विषतन्त्र का प्रयोग करते हैं तब तक अन्य आवश्यक उपक्रम जुटाओ।

(बैठकर व मण्डल की रचना करके)

टेढ़ी मेढ़ी गति से चलने वाले! मण्डल में जा मण्डल में। वासुकीपुत्र! ठहरो! ठहरो। बस तब तक शू...शू... करता रह जब तक मैं तेरा शिरावेध करता हूँ। कुल्हाड़ी कहाँ है।

गणिका – मूर्ख वैद्य! अलं परिश्रमेण।

गणिका – मूर्ख वैद्य। अनावश्यक श्रम मत करो।

वैद्यः अइ[240]! पित्तं पि अत्थि। अअं दे पित्तं वादं[241] सेह्मं च णासेमि (अयि! पित्तमप्यस्ति। अयं ते पित्तं वातं श्लेष्माणं च नाशयामि)

वैद्य – अरे! इसे तो पित्त विकार भी है। तब तो पित्त वात तथा कफ तीनों का ही उपचार करते हैं।

रामिलकः क्रियतां[242] यत्नः। न खल्वकृतज्ञा वयम्।

रामिलक – जो भी प्रयत्न हो सके करें। हम सभी आपके आभारी होंगे।

वैद्यः सुन्दर गुलिअं वाल[243]वेज्जं आणेमि (सुन्दरगुलिकं व्यालवैद्यमानयामि)। (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति यमपुरुषः)

वैद्य – मैं सुन्दरगुलिक नाम के विषवैद्य को लेकर आता हूँ।

(यमपुरुष का प्रवेश)

यमपुरुषः भो! भर्त्सितोऽस्मि[244] यमेन

न सा वसन्तसेनेयं क्षिप्रं तत्रैव नीयताम्।
अन्या वसन्तसेना सा क्षीणायुस्तामिहानय[245]।।30।।

इति[246]यावदस्याश्शरीरमग्निसंयोगं नोपनीयते[247], तावत् सप्राणामेनां करोमि। (विलोक्य) अये! उत्थिता खल्वियम्। भो! किन्नु खल्विदम्।

अस्या जीवो मम करे उत्थितैषा वराङ्गना।
आश्चर्यं परमं लोके भुवि पूर्वं न दृश्यते।।31।।

यमपुरुष - खेद है कि आज तो बहुत भला बुरा सुनाया यमराज ने- अरे! यह वह वसन्तसेना नहीं है, जिसको लाने के लिए मैंने कहा था। वह दूसरी है। अतः जाओ और इसे शीघ्र वहीं छोड़ कर आओ, जहाँ से लाये थे तथा बदले में दूसरी वसन्त सेना को ले आओ, जिसकी आयु क्षीण हो चुकी है।। 30 ।।

अतः जब तक इसके शरीर का अग्नि संस्कार नहीं होता तब तक शीघ्र चलकर इसे सप्राण करते हैं। (देखकर) अरे! बड़े आश्चर्य की बात है। यह तो पहले से ही उठ कर बैठी हुयी है। यह क्या हुआ? इसके प्राण तो मेरे हाथ में हैं और यह सुन्दरी सप्राण होकर बैठी है। ऐसा आश्चर्य तो धरती पर मैंने पहले कभी देखा ही नहीं था।। 31 ।।

(सर्वतो विलोक्य)

अये! अत्रभवान्[248] योगी परिव्राजकः क्रीडति। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्! अस्या गणिकाया आत्मानं परिव्राजकशरीरे न्यस्य अवसिते कर्मणि यथास्थानं योजयिष्यामि[249]। (तथा कृत्वा)

एते विप्रशरीरेऽस्मिन्[250] स्त्रीप्राणा विनियोजिताः।
यथासत्त्वं यथाशीलं प्रायो यास्यन्ति विक्रियाम्।।32।।

(चारों ओर देख कर)

अरे यहाँ तो योगिराज परिव्राजक खेल रहे हैं तो ...फिर...क्या किया जाय। ठीक है, देखता हूँ। बस इस गणिका की आत्मा को परिव्राजक के निश्चेष्ट शरीर में स्थापित करता हूँ और अपना कर्तव्य समाप्त कर चलता हूँ। (वैसा ही करता है)- ब्राह्मण के इस शरीर में इस स्त्री के प्राणों का प्रवेश करा दिया है। अब सत्त्व एवं शील में विकार होता रहेगा अर्थात् आचार विचार में उल्टा सीधा होता रहेगा।।32।।

परिव्राजकः (उत्थाय)[251] परहुदिए! परहुदिए! (परभृतिके! परभृतिके)

परिव्राजक - (उठकर) परभृतिके! परभृतिके!

शाण्डिल्यः अविहा! पच्चा अदप्पाणे[252] खु भअवो। आ! तक्केमि दुक्खमाइणो[253] ण मरन्तित्ति[254] (अविधा! प्रत्यागतप्राणः खलु भगवान्। आ! तर्कयामि दुःखभागिनो न म्रियन्त इति)

शाण्डिल्य – अ–हा! भगवन् तो पुनः जीवित हो उठे हैं। आ–ह। मैं तो समझता हूँ कि दुर्भाग्यशाली मरते ही नहीं हैं।

परिव्राजकः कहिं कहिं रामिलओ (कुत्र कुत्र रामिलकः)।

परिव्राजक – कहाँ है। कहाँ है रामिलक।

रामिलकः भगवन्! अयमस्मि[255]।

रामिलक – भगवन्! मैं यहाँ हूँ।

शाण्डिल्यः भअवं! किं एदं। कुण्डि अग्गहणोइदं वामहत्थं संखवलय[256] अपूरिदं विअ मे पडिदाभि। *णेव भअवो, णेवाज्जुआ। भअवदज्जुअं णाम संवुत्तं*[257] (भगवन्! किमेतत्। कुण्डिकाग्रहणोचितो वामहस्तः शङ्खवलयपूरित इव मे प्रतिभाति। नैव भगवान् नैवाज्जुका। भगवदज्जुकं नाम संवृत्तम्)।

शाण्डिल्य – भगवन्! यह क्या हो गया? जिन बायें हाथों में कमण्डलु धारण किया होना चाहिए उसमें शंख का कंगन है। भगवन् आप न तो संन्यासी ही हैं और न ही अज्जुका। ऐसे में तो आपका भगवदज्जुकम् नाम सार्थक सा हो रहा है।

परिव्राजकः रामिलअ! आलिङ्गेहि मं (रामिलक! आलिङ्ग माम्)

परिव्राजक – रामिलक। मेरा आलिङ्गन करो।

शाण्डिल्यः किंसुअं आलिङ्गेहि (किंशुकमालिङ्ग)।

शाण्डिल्य – किंशुकवृक्ष का आलिङ्गन करो।

परिव्राजकः रामिलअ! मत्ता खु अहं (रामिलक! मत्ता खल्वहम्)

परिव्राजक – रामिलक! मैं मदोन्मत्त हो रही हूँ।

शाण्डिल्यः णहि णहि। उम्मतो खु तुवं (नहि नहि! उन्मत्तः खलु त्वम्)।

शाण्डिल्य – नहीं नहीं! तुम उन्मत्त हो रहे हो।

रामिलकः *भगवन्! आश्रम*[259] विरुद्धः खल्वयमालापः।

रामिलक – भगवन्। आप की बात तो अब आश्रम धर्म के विरुद्ध हो रही है।

परिव्राजकः सुरं पिबामि (सुरां पिबामि)

परिव्राजक – मैं तो सुरा पान करूँगा।

शाण्डिल्यः विसं पिब। भोदु, परिहासप्पमाणं जाणिस्सं[260] (विषं पिव। भवतु परिहासप्रमाणं ज्ञास्यामि)

शाण्डिल्य – विष पियो। ठीक है, मैं उसे परिहास मानूंगा।

परिव्राजकः परहुदिए! परहुदिए! आलिङ्गेहि मं (परभृतिके परभृतिके! आलिङ्ग माम्)

परिव्राजक – परभृतिके! परभृतिके। मेरा आलिङ्गन करो।

चेटी – **अपेहि[261] (अपसर)**

चेटी – दूर हटो।

माता – **जादे! वसन्तसेणे (पुत्रि! वसन्तसेने)**

माता – पुत्री! वसन्तसेने!

परिव्राजकः *इअह्मि! अत्ते*[262]! वन्दामि (इयमस्मि! माता! वन्दे)।

परिव्राजक – मैं यहाँ हूँ। माता! प्रणाम।

माता – **भअवं! किं एदं (भगवन्! किमेतत्)।**

माता – भगवन्। यह क्या हो रहा है?

परिव्राजकः अत्ते! पच्चभि[263] जाणासि मं रामिलअ[264]! अज्ज चिराइदं खुतुए। (मातः। प्रत्यभिजानासि माम् रामिलक! अद्य चिरायितं खलु त्वया।)

परिव्राजक – माता! मुझे आप पहचान रही हैं। रामिलक! तुमने आज निश्चित रूप से विलम्ब कर दिया है।

रामिलकः भगवन्! न वश्योऽस्मि।

रामिलक – भगवन्! मैं स्वाधीन नहीं हूँ।

शाण्डिल्यः होदु[265] (भवतु)

शाण्डिल्य – ठीक है।

(प्रविश्य वैद्यः)

वैद्यः गुलिआ *मए अट्ठ गहिदा*[266]। ओसहं[267] च *खणे खणे जीविस्सदि मरिस्सादिति*[268] (उपगम्य) उदअं उदअं (गुलिका मया अष्टौ गृहीताः। औषधं च। क्षणे क्षणे जीविष्यति मरिष्यतीति। उदकमुदकम्)।

(वैद्य का प्रवेश)

वैद्य – औषधि व आठों गुलिकायें मैंने रख रखी हैं। अरे! यह तो रह रह कर जियेंगी और मरेंगी। पानी लाओ पानी।

चेटी – इदं उदअं (इदमुदकम्)

चेटी – हाँ! हाँ! यह रहा पानी।

वैद्यः गुलिअं ओघट्टआमि। अविहा! ण हु इअं[269] दट्ठा। आविट्ठा खु इअं[270](गुलिकामवघट्टयामि। अविधा! न खल्वियं दष्टा। आविष्टा खल्वियम्)

वैद्य – बस बस! अब मैं गुलिका को छोड़ता हूँ। अरे। इसको साँप ने तो नहीं काटा। इसमें तो किसी का प्रवेश हो गया है।

गणिका – मूर्ख वैद्य! वृथावैद्य! प्राणिनामन्तकमपि न जानीषे। कतमेनेयं सर्पेण व्यापादितेति वद।

गणिका – मूर्ख वैद्य! अनुभवहीन वैद्य! मरणासन्न प्राणियों का लक्षण भी तुम्हें कुछ मालूम है। बोल कौन से सर्प ने इसे काटा है।

वैद्यः किं एत्थ अच्छरिअं[271] [किमत्राश्चर्यम्]

वैद्य – इसमें भी कुछ आश्चर्य है क्या।

गणिका – शास्त्रमप्यस्ति[272]।

गणिका – इसके परीक्षण के कुछ शास्त्र भी हैं?

वैद्यः *सत्थसहस्सं अत्थि*[273] [शास्त्रसहस्रमस्ति]

वैद्य – हजारों शास्त्र हैं।

गणिका ब्रूहि, ब्रूहि, वैद्यशास्त्रम्।

गणिका – बोलो बोलो! वैद्यक शास्त्र क्या कहता है?

वैद्यः सुणादु भोदी[274] (शृणोतु भवती) वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लै श्लै अविहा! पुत्थअं, पुत्थअं[275] !(अविधा! पुस्तकं पुस्तकम्)

वैद्य – देवि सुनें– 'वातिकाः पैत्तिकाश्चैव–श्लै श्लै'। अरे! पुस्तक लाओ! पुस्तक लाओ!

शाण्डिल्यः अहो! वेज्जस्य अभिरूवदा। एक्कपदे वीसरिदो[276]। होदु, मम वअस्सो एव्वं इदं पुत्थंअ[277] (अहो! वैद्यस्याभिरूपता। एकपदे विस्मृतः। भवतु, मम वयस्य! एवं इदं पुस्तकम्)।

शाण्डिल्य – वैद्यराज धन्य है तुम्हारी विद्वत्ता। एकबारगी सब भूल गये। अच्छा! मेरे मित्र! यह रही वैद्यक शास्त्र की पुस्तक।

वैद्यः सुणादु भोदी[278](शृणोतु भवती)
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लैष्मिकाश्च महाविषाः।
त्रीणि सर्पा भवन्त्येते चतुर्थो नाधिगम्यते।।33।।

वैद्य – देवि सुनें– महाविष तीन प्रकार के ही हैं। वातिक, पैत्तिक व श्लैष्मिक। अतएव तदनुसार सर्प भी तीन प्रकार के होते है। इसके अतिरिक्त चौथे के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।। 33 ।।

गणिका – अयमपशब्दः। त्रयः सर्पा इति वक्तव्यम्। त्रीणीति[279] नपुंसकं भवति।

गणिका – अरे। आपने तो अशुद्ध कहा 'त्रयः सर्पाः' बोलना चाहिए न कि 'त्रीणि सर्पाः'। त्रीणि का व्यवहार तो नपुंसकलिङ्ग में होता है।

वैद्यः अविहा! वैआअरण[280]सप्पेण खादिदा[281] भवे (अविधा! वैयाकरणसर्पेण खादिता भवेत्)।

वैद्य – ओह! ऐसा लगता है कि वैयाकरण सर्प ने काटा है।

गणिका कियन्तो विषवेगा

गणिका – विष के कितने वेग होते है।

वैद्य: विसवेआ[282]सदं (विषवेगाश्शतम्)।

वैद्य – विष के तो सौ वेग होते है।

गणिका – न न, सप्तविषवेगाः। तद्यथा,

रोमाञ्चो मुखशोषश्च वैवर्ण्यं चैव वेपथुः।

हिक्का श्वासश्च सम्मोहः सप्तैते[283] विषविक्रियाः।।34।।

सप्तविषवेगाद[284]तिक्रान्तोऽश्विभ्यामपि न शक्यते चिकित्सितुम्। अथ[285] वक्तव्यमस्ति चेत्[286] ब्रूहि।

गणिका – नहीं नहीं। विष के वेग तो सात ही प्रकार के होते हैं जैसे– रोमाञ्च, मुख का सूखना, म्लान होना, शरीर में कम्पन, हिचकी, सांस का तेज चलना तथा मूर्च्छा होना ये सात प्रकार के ही तो विष–विकार होते हैं ।। 34 ।।

इन सात प्रकार के विष वेगों से अतिक्रान्त रोगियों की चिकित्सा तो अश्विनीकुमार युगल से भी संभव नहीं है। यदि इस संबंध में कुछ कहना चाहते हो तो कहो–

वैद्य: ण हु अह्माणं[287] विसओ। णमो भोदिए[288]। गच्छामि[289] दाव अहं (न खल्वस्माकं विषयः। नमो भवत्यै। गच्छामि तावदहम्)। (निष्क्रान्तः)

वैद्य – यह हमारा विषय नहीं है। देवि! आपको नमस्कार है। तो फिर अब हम चलते है। (चला जाता है)

(प्रविश्य यमपुरुषः[290])

यमपुरुषः भो[291]।

गर्भस्रवैश्च पिटकज्वरकर्णरोगै–

गुल्माधिशूलहृदयाक्षिशिरोरुगाद्यैः।

अस्मिन् क्षणे बहुविधैः खलु विद्रवैश्च

क्षिप्रं कृता यमपुराभिमुखाश्च जीवाः।।35।।

मुच्यतां वृषल्या शरीरम्[292]

(यमपुरुष का प्रवेश)

यमपुरुष – गर्भस्राव, फोड़ा, ज्वर, कर्णरोग, पेट में गोला होना, मानसिक व्याधि, शरीर के अन्दर दर्द, हृदय, आँख तथा शिर में वेदना इस तरह अनेक उपद्रवों से पराभूत जीव शीघ्र ही यमपुरी का रास्ता देखता है ।। 35 ।।

तब तक हम भी भगवान् को सन्देश देने हेतु प्रतीक्षा करते हैं। (गणिका के समीप जाकर) भगवन्! कृपया इस वारवनिता के शरीर को मुक्त करें (अर्थात् छोड़ दें)

गणिका – छन्दतः

गणिका – ठीक है! ऐसा ही करते हैं (अर्थात् मुक्त करते है)

यमपुरुषः ***यथास्या जीव***[293]**विनिमयं कृत्वा**[294] **स्वकार्यमनुतिष्ठामि। (तथा कृत्वा निष्क्रान्तः)**

यमपुरुष – बस अब हम इसके प्राण को पुनः प्रतिष्ठित कर अपने कार्य में लगते हैं (और वैसा ही करके चला जाता है)।

परिव्राजकः शाण्डिल्य! शाण्डिल्य!

परिव्राजक – शाण्डिल्य! शाण्डिल्य।

शाण्डिल्यः एसा[295] **भअवो सभावे**[296] **पज्जवत्थिदो**[297] **(एष भगवान् स्वभावे पर्यवस्थितः)**

शाण्डिल्य – अरे! भगवन् तो अपने स्वाभाविक रूप में पुनः आ गये।

गणिका – परहुदिए! परहुदिए! (परभृतिके! परभृतिके)

गणिका – परभृतिके! परभृतिके!

चेटी – एसा अज्जुआ सभावेण[298] **मन्तेदि (एषा अज्जुका स्वभावेन मन्त्रयते)**

चेटी – यह अज्जुका अब तो स्वभावानुकूल आचरण कर रही हैं।

माता – जादे! वसन्तसेणे[299] (पुत्रि! वसन्तसेने)

माता – पुत्रि! वसन्तसेने!

रामिलकः प्रिये[300] वसन्तसेने! इत इतः[301]

(निष्क्रान्ता गणिका माता रामिलकचेट्यौ[302] च)

रामिलक – प्रिये! वसन्तसेने! इधर से! इधर से। (गणिका, माता, रामिलक और चेटी चले जाते हैं।)

शाण्डिल्यः भअवं! किं एदं (भगवन्! किमेतत्)

शाण्डिल्य – भगवन्! यह क्या हो गया था।

परिव्राजकः महती खलु कथा। आवासे कथयिष्यामि। (दिशो विलोक्य[303]) गतो दिवसः। सम्प्रति हि,

> अस्तं गतो हि दिनकृद्गगनान्तलम्बी।
> मूषामुखस्य इव तप्तसुवर्णराशिः।।
> यस्य प्रभाभिरनुरञ्जितमेघवृन्द–
> मालक्ष्यते दहनगर्भमिवान्तरिक्षम्।। 36 ।।

(निष्क्रान्तौ)

शिवमस्तु सर्वजगतां, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोक[304]।।37।।

परिव्राजक – यह एक लम्बी कहानी है। घर चलकर बताऊँगा– (दिशाओं की ओर निहार कर) अरे! दिन तो बीत गया। अब तो,

सूर्य अपने घर अस्ताचल की ओर जा रहे हैं। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आकाश के छोर पर लटाका हुआ सूर्य जैसे मूष (कुल्हिया) में तपायी हुयी सुवर्ण–राशि हो। इसकी लोहित आभा से मण्डित मेघवृन्द अन्तरिक्ष के गर्भ में आग जैसा प्रतीत हो रहे हैं ।। 36 ।।

(सब बाहर जाते हैं।)

1. ख. भगवदज्जुकम् से पूर्व 'श्रीः' व पश्चात 'प्रहसनम्'। 2. ख. रेखांकित भाग नहीं है। 3. ख. लक्षणाद्यः सुरवरमु...है। 4. ख. अस्मदीय 5. ख. अय्य। समस्त प्रहसन में 'अ्अ' के स्थान पर अय्य' का प्रयोग है। 6. ख. तह। 7. ख. अय्य विजणं गुहं इदम्। 8. ख. आचिक्खोदु। 9. क. आचष्टम् 10. क. सप्तमेहनि। 11. ख पअरणं णाई आदि। 12. ख. पारे। 13. ख. हास्सेवि। 14. ख. शिक्ष्यतां 15. ख कृतबुद्धिस्तवं 16. ख- इव मां। 17. ख- प्रस्तावना इत्यस्ति। 18. ख-शाण्डिल्य! (पृष्ठतोऽवलोक्य) न तावद्दृश्यते। 19. ख- पुडमं। 20. ख- करड। 21. ख-बमंण्व। 22 ख- जिदिअ। 23. ख- गहिअ। 24. ख-दुटठाचय्यस्स। 25. ख-संउत्तो। 26. ख-में यह रेखांकित अंश नहीं है। 27. ख- गदौति। 28. तक्केमि के उपरान्त-जावदूर पदं भअवंतं सभावेमि-'ख' में। 29. उपगम्य-ख। 30. मर्षयतु मर्षयतु-ख। 31. इमस्मि-ख। 32 णिच्चोच्चवविसेसे-ख। 33. आहिंडदि-ख। 34. ख में यह नहीं है। 35. अमानकामस्-ख। 36. खु-क। 37. एकोऽहं अन्न-क। 38. अलीअं-ख। 39. तदाऽस्य-ख। 40. लहदि-ख। 41. लभते तदा-ख। 42. भो भअवं कि....ख। 43. असंगदं ति-ख। 44. कि एदं पनुण अस्थि-ख। 45. नासतस्संज्ञा-ख 46. ख में नहीं है। 47. कस्सन्देहः-ख। 48 अलीअं, अलीअं-ख। 49. मं किस्स-ख। 50. जदि-ख। 51. अच्चेरं अच्चेरं-ख। 52 ताडेदि किल भअवो। जिज्जदु एसा कहा-ख। 53. भिक्खुवला-ख। 54. प्रातस्तावन्न-ख। 55 ख में यह पुरा वाक्य इस प्रकार है- हा हा पडिज्जाहाणीओ खु भअवो संवुतो। 56. समसुहदुक्खो-ख। 57. ख में नहीं है। 58. सोन्तरात्मा-क। 59. सोप्यात्मा-क। 60. देहोयं-क। 61. संज्ञितोव्यया-ख। 62. भुंजेदि-ख। 63. आ अपेहि अभिग्गहीदोसि-ख। 64. दाणिं-ख। 65. अस्थि किंवि-ख। 66. तिट्ठतु-ख। 67. तुमं-ख। 68. कोप्यहं-क। 69 विअत्ताणं वि णजाणादि-ख। 70. क में नहीं है। 71. उय्याणं-ख। 72. त्वं तावत्प्रविशाग्रतः-ख। 73. भअवो-ख। 74. विसदु-ख। 75. होलाअणीए-ख। 76. ख में नहीं है। 77. गहीदोह्मि मोचेइ-ख। 78. बग्घमुखादो-ख। 79. खाइदम्हि-ख। 80. तेण हि उग्घाडम्मि-ख। 81. हं दासीए पुत्तो-ख। 82. गण्हिअ-ख। 83. चंपअअज्जुण-ख। 84. अकुरव अकण्णि आरकप्पूरचूदपि-ख। 85. सुल-ख। 86. वण्ण-ख। 87. कुटचवह्निर्चंदनासे-ख। 88. आन्क्वित्तत-ख। 89. समवकिण्णं वसंदेमसोहिदं पवालपत्तपल्लवदल-ख। 90. समालदील-ख। 91. सोआहिहूदजुवदी जणांणं अगुदाव-ख। 92. संपवुत्ताणं-ख। 93 उय्याणं-ख। 94. णं कहिं दाणिं उपविसामो-ख। 95. इहैव वसिष्यावहे-ख। 96 अपोक्खं अपोक्खं। (अपोक्षमपोक्षम्)-ख। 97. जइ-ख। 98. उपविसदुकामो-ख। 99 अपोक्खं पोक्खं-ख। 100. एव्वं-ख। 101. हु-ख। 102. बहुअं मंतअतस्स-ख। 103. एहि-ख। 104. कालान्तराद्विज्ञेया-ख। 105. अधीदे-ख। 106. अदिट्ठो परगेहाणि पविसिदुं-ख। 107. सुसाथिदाणि संघप्पउत्ताणि-ख। 108. कारणादो एव्वं तुमं मुंडिदोसि णहु दे अण्ण पओअणं पेक्खामि-ख। 109. महात्माभिस्-ख। 110. महन्मया-क। 111. एक्को एव्व तुमं सुसमाहिदो जोअं एव्व चिंतेदु। अहं सुसमाहिदो ओदणं एव्व चिन्तेमि। भो भअवं जो ओजोओत्ति तुम्मारिसा पव्वाजआ बहुअं मंतअंति को ऐसो जोओ णाम-ख। 112. तपस्सारं-ख। 113. जाणासि पुडमं-ख। 114. अस्थि अस्थि

पहुद वि अत्थि ख। 115 एव्व भअवदा णिण्ण महमपुरुसेसु ठच ख। 116 चिदाए अण्णं मए चिरिंद अण्ण मरिद–ख। 117. 'ख' में इसका विन्यास इस प्रकार से है– अदिण्णदाणादो वेरमणि सिक्खापदं, पाणादिपादादो वेरमणि सिक्खापदं, मुसावादादो वेरमणि सिक्खापदं, अब्बम्हचय्यादो वेरमणि सिक्खापदं, अकालभोअणादो वेरमणि सिक्खापदं। 118. मिथ्या सत्त्वस्थस्तुसमहितः–ख। 119. भवन्त्यान– मेतज्ज्ञानप्रयोजनम्–ख। 120. एव्व चिन्तेमि–ख। 121. सर्वात्मनात्मानमवेक्ष्य–ख। 122. हञ्जे महुअरिए–ख। 123. हु एदं भवे–ख। 124. किं अण्णं–ख। 125. इदाणिं–ख। 126. मत्तावेइ हासावेइ–ख। 127. इद्भि–ख। 128. तहा–ख। 129. इति निष्क्रान्ता–ख। 130. परहुदिए कहिं–ख। 131. मुहुत्तं वि अ उपविसिअ एक्कं वत्तुअं–ख। 132. हञ्जे परहुदिए एव्वं होदु–ख। 133. श्रुत्वा–ख। 134. कोइलरवो। ण खु अअं कोइलरवो। कोएसो (विभाव्य)–ख। 135.घिदं पच्छितं विअ महुरो–ख। 136. पेक्खामि (किञ्चिद्गत्वा विलोक्य) – ख। 137. का दाणिं इअं–ख। 138. उय्याणस्स–ख। 139. उवट्ठिदा–ख। 140. क एष। पायसे घृतं प्रक्षिप्तमिव मधुरः कोऽपि गीतरवः – ख। 141. अपि हा केदानीमियं तरूणी दर्शनीया–ख। 142. धण्णा–ख। 143. सधणा–ख। 144. वि–ख। 145. चित्तुअं–ख। 146. तहा–ख। 147. वि–ख। 148. आः! अपेहि युक्तव्यवहारी भव–ख। 149. कुप्पिदुं–ख। 150. उत्क्रोऽस्मि–ख। 151. भृशम्–ख। 152. संप्राप्तोऽस्मि–ख। 153. (विलोक्य) अये–ख। 154. सपल्वै–ख। 155. अस्त्यस्या–ख। 156. मा मा अहं एवं गहणामि–ख। 157. सन्दशकालः–ख। 158. सर्पत्व–ख। 159. स्थित्वा अस्याः–ख। 160. हरामि। (तथा कुर्वन्)....क 161. प्रलापं–ख। 162. मत्तां–ख। 163. ख में यह कुछ इस प्रकार है– (तरु शाखं विलोक्य) अज्जुए एसो असोअ कोउरं तरितो वालो। 164. वालो–ख। 165. अय्य–ख। 166. वालेण–ख। 167. वालेण–ख। 168. ख में यह अंश नहीं है। 169. सीददि विअ में शरीरं उब्भमेति विअ मे प्पाणा, सइदुं इच्छामि–ख। 170. हञ्जे अत्तं–ख। 171. यह अंश ख में नहीं है। 172. गदुअ अत्तं अभिवादेहि णं–ख। 173 अ आलिंगेहि (इति मूच्छिता पतति)–ख। 174. ख में यह नहीं है। 175. परमप्रिया–ख। 176. प्राणैरेव–ख। 177. अवेहि–ख। 178. कूर, सड मुधामुंड–ख। 179. णाम्पाष्टसदं–ख। 180. एमा–ख। 181. एसापि–ख। 182. किंचि–ख। 183. करेदि–ख। 184. दुर्लभस्नेहोऽपि–ख। 185. भूयोऽर्थ–ख। 186. स्निह्यत इति–ख। 187. कुप्पिदं–ख। 188. गाअणि–ख। 189. अउ्अ–ख। 190. खुअय्यो–ख। 191. मोदि–ख। 192. मा नु पादाणि आभिसिदुं–ख। 193. आउलाउलहि–ख। 194. ण जाणामि–ख। 195. अलित्ताणि धणाणि अणाणुगेमुहाणि–ख। 196. अधण्णस्स मह–ख। 197. जीवंतीए–ख। 198. अय्य! मुहुत्त अज्जुअं पडिवालेदु–ख। 199. अहं खु अत्तां–ख। 200. सानुक्कोसो–ख। 201. परित्त जदि–ख। 202. गदा–ख। 203. आवेहि–ख। 204. चिकिच्छी–ख। 205. आश्रमाधार आश्रमपदं च–ख। 206. ....चार्यै महद्भिः....ख। 207. करिष्ये। ईदृशो–ख। 208 गणिकायास्शरीरे–ख। 209. नियोजयामि–ख। 210. अविहा जीवदि–ख। 211. अदिपोक्खिणी–ख। 212. मुदो खु–ख। 213. वाचालअ–ख। 214. आदिजोगविस–ख। 215. एव्व–ख। 216 स्मरन्ति–ख। 217. कहिं– ख। 218. उय्याणे–ख। 219. समस्सदु! समस्सदु–ख। 220

220 सत्थड्डिदा ख। 221 ण पइदित्था (उपसृत्य) जादे ख। 222 सो ख। 223 तहा-ख। 224. जेदुजेदु-ख। 225. अपेक्खंती संतवदि-ख। 226. तावदस्याः-ख। 227. वस्त्रान्तं गृह्णन्-ख। 228. चेटी-ख। 229. मंतेदि-ख। 230. शरीरेन्धेन-क। 231. अय्यो-ख। 232. एसा खु अज्जुआ ण दाव सत्थद्विदाधस्सिदा महासप्पेण खदिदा भवे-ख। 233. ख में वैद्य का यह कथन पूर्व के चेटी के संवाद में ही संपृक्त है। 234. अय्यो-ख। 235. करोदीत्ति-ख। 236. मह सव्वारंभाणि दाव आरंभामि विसतंते-ख। 237. पविस पविस-ख। 238. 'ख' में यह अंश नहीं है। 239. अहं च - ख। 240. ख में नहीं है। 241. वातं-ख। 242. भो क्रियतां-ख। 243. वाल-ख। 245. तामिहाऽनय-ख। 246. ख में नहीं है। 247. न स्वीकरोति-ख। 248. अयमत्रभावन्-ख। 249. विनियोजयामि-ख। 250. रेस्मिन-क। 251. (निष्क्रान्तः)-ख। 252. पञ्चागदप्पाणो-ख। 253. दुक्खभागिणो-ख। 254. म्मिअंतित्ति-ख। 255. भगवन्नयमस्मि-ख। 256. संकवल-ख। 257. यहाँ इतना रेखांकित अंश ख में नहीं है। 258. तुमं-ख। 259. भगवन्नाश्रम-ख। 260. इस रेखांकित अंश के पश्चात् 'णेव भअवो णेव अज्जुआ। अहवा भअवदज्जुअं णाम एदं संउत्तं होदु, इतना अंश ख में और है। 261. अवेहि-ख। 262. अत्ते इयह्मि-ख। 263. पञ्च-ख। 264. रामिल-ख। 265. यह अंश क में नहीं है। 266. अदूठ मया गहीदा-ख। 267. ओसधं च-ख। 268. जाणेखणेन जीविस्सदि मरिस्सदि वा त्ति-ख। 269. अं-ख। 270. भवे-ख। 271 अच्चारिअं-ख। 272. शास्त्रमस्ति-ख। 273. अत्थिपभूदं वि-ख। 274. होदी-ख। 275. पुत्थअं पुष्थअं-ख। 276. विसुमरिदो-ख। 277. पुत्तअं-ख। 278. होदी-ख। 279. त्रीणि-ख। 280. वैयाकरण-ख। 281. खादिदा-ख। 282. विसवेगा-ख। 283. सप्तैता-ख। 284. वेगान्-ख। 285. अथवा-ख। 286. चेद्-ख। 287. अम्मार्णा-ख। 288. भअवदीए-ख। 289. गच्छामि गच्छामि-ख। 290. 'ख' में नहीं है। 291. एव भो-ख। 292. वृषल्यास्शरीरम्-ख। 293. यथाऽस्याजीव-ख। 294. कृत्वा यावदहमपि-ख। 295. एसो खु-ख। 296. 'ख' में नहीं है। 297. पय्यवत्थिदो-ख। 298. सहावेण-ख। 299. वसंदसेणे-खे। 300. हन्तः प्रसन्ना! प्रिये-ख। 301. इतः-ख। 302. रामिलकश्चेटी सपरिवारा माला च-ख। 303. अवलोक्य-ख। 304. क में यह श्लोक नहीं है।

भाग (2)

अध्याय -1

भगवदज्जुकायम्: कथावस्तु एवं उसका स्रोत

रूपक-विधान के अनुसार रूपकों की कथावस्तु का कोई न कोई आधार व उसका स्रोत होता है। देखते हैं कृतिकार बोधायन ने अपने रूपक का स्रोत कहाँ से ग्रहण किया है।

कथावस्तु :

भगवदज्जुकीयम् की कथावस्तु उत्पाद्य है। यह प्रहसन रूपक है, अतएव इसकी कथावस्तु का उत्पाद्य होना शास्त्रसम्मत है। कथा में, योग के महत्त्व के प्रतिपादनार्थ 'परकायप्रवेश' के विषय का समावेश करने हेतु निश्चितरूप से कवि ने महाभारत, पातञ्जल योगसूत्र तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों में आए परकाय प्रवेश विषयक उद्धरणों से प्रेरणा ग्रहण की है। 'परकायप्रवेश' ने ही परिव्राजक के योग को शाण्डिल्य की दृष्टि में मूर्तरूप प्रदान किया, अन्यथा शाण्डिल्य जैसा मूर्ख शिष्य किसी भी प्रकार से योग पर विश्वास करने वाला न था। उसकी दृष्टि में सब ढोंग था। पेट भरने का साधन मात्र था। वह अपनी ही भाँति गुरु को भी पेटू व ढोंगी समझता था।

प्रस्तुत प्रहसन में शाण्डिल्य एक मूर्ख वटु है। वह निर्धन है। उसके घर में खाने के लिए भोजन तक का प्रबन्ध नहीं था[1]। वह पेटू व भुक्खड़ भी है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वह भोजन की लालसावश बौद्धाचार्य से दीक्षा लेकर शाक्य श्रमणक बना था। उसने कुछ दिनों तक बौद्ध-धर्म के बोझ को ढोया परन्तु अपने पेटूपन के कारण ही वह बौद्ध धर्म के अनुकूल खुद को ढाल न सका क्यो कि बौद्ध भिक्षुओं को दिन में एक ही बार भोजन दिए जाने का नियम है[2]। परिणामतः खीझकर शाण्डिल्य ने बौद्ध भिक्षु के अनुरूप धारण

किए हुए चीवर आदि को फाड़ कर फेंक दिया तथा पात्रो को तोड़कर बौद्ध विहार से पलायन कर दिया।

बौद्ध धर्म से पलायित शाण्डिल्य ने परिव्राजकाचार्य क शिष्यत्व ग्रहण किया। उसने परिव्राजकाचार्य का शिष्यत्व तो ग्रहण कर लिया परन्तु पुनरपि उसके आचरण में कोई परिवर्तन नहीं आया। वैसा ही पूर्ववत् पेटूपन, वैसी ही अनुशासनहीनता। योगसाध ाना व तपश्चर्या में उसकी लेशतोऽपि न दृष्टि थी न रुचि। वह एकमात्र अपनी बुभुक्षा[3] की शान्ति के साधनों को एकत्रित करने के चिंतन में रहता है। भिक्षाटन के समय शाण्डिल्य अपने गुरू की झोली ढोया करता था। खाने-पीने के मामले में उसे अपने गुरु पर भी विश्वास न था। वह सोचता था कि गुरुजी प्रातः काल भोजन की लालच से अकेले ही भिक्षा मांगने चले जाते हैं।

शाण्डिल्य परिव्राजक के प्रति बहुत ही अनुशासनहीन है। उसमें गुरु-भक्ति बिल्कुल नहीं है। वह परिव्राजकाचार्य को प्रायः अपशब्दों से सम्बोधित करता है[4]।

परिव्राजकाचार्य विद्वान, संन्यासी तथा योगी हैं[5]। सांख्यदर्शन तथा योग पर उनका पूर्ण आधिपत्य है[6]।

परिव्राजकाचार्य ने अपनी योग साधना के द्वारा गणिका के शरीर में प्रवेश कर योग की शक्ति को शाण्डिल्य के समक्ष प्रतिष्ठापित किया।

शाण्डिल्य ने परिव्राजकाचार्य का आश्रम एकमात्र भोजन की लालच से ग्रहण किया था। इस तथ्य का अनावरण उसने गुरु की भिक्षाटन-प्रवृत्ति "अमानकामः सहित व्यधर्षणः कृशाज्जनाद् भैक्षकृतात्म-धारणः[7]" को सुनने के पश्चात किया। गुरु ने शिष्य को सुखदुःख में समान आचरण की शिक्षा दी। पंचतत्त्वों से निर्मित मनुष्य शरीर के स्थूल व सूक्ष्म तत्त्वों को स्पष्ट करते हुए आत्मा के अमरत्व अजरत्व को उपदिष्ट किया। गुरु ने शिष्य को सांख्य तथा योग से संबंधित अनेकानेक तत्त्वों को अत्यंत सूक्ष्मता से समझाने की

चेष्टा की परन्तु शाण्डिल्य के ऊपर इस ज्ञान का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। चिकने घड़े पर जल की भांति स्थिर न रह सका।

परिव्राजकाचार्य के सुखदुःख तथा भय व हर्ष के समय समान व्यवहार किए जाने के उपदेश पर शाण्डिल्य के मूर्खतापूर्ण प्रश्नों की बौछार ने परिव्राजकाचार्य को उत्तेजित कर दिया। ऐसे क्षणों में वह अपने को क्रोधजित न सिद्ध कर पाए। उत्तेजना जन्य उनके कोप पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए शाण्डिल्य कहता है– "भगवन्! आप क्रोध करते हैं? अभी तो आप ने समान व्यवहार की बात कही थी। –भय, हर्ष, सुख एवं दुःख में एक सा आचरण करना चाहिए परन्तु आप तो स्वयं ही उसके विपरीत आचरण कर रहे हैं।" इस पर परिव्राजकाचार्य ने खीझ कर शिष्य को 'नाधीषे' कहा। शिष्य (शाण्डिल्य) भी बातों बातों में उच्छृंखल हो प्रत्युत्तर में गुरु (परिव्राजकाचार्य) के प्रति तुम शब्द का उच्चारण करते हुए कहता है– 'यद्यहमधीये वा नाधीये वा किं तव मुक्तस्य[8]।'

परिव्राजकाचार्य के सतत कोप को तोड़ते शाण्डिल्य ने कहा–भगवन्! इस कथा को यहीं समाप्त कर दें। भिक्षा की बेला का अतिक्रमण होता जा रहा है। परिव्राजकाचार्य ने कहा–मूर्ख! सवेरे–सवेरे भिक्षा नहीं मांगी जाती। चलो किसी उद्यान में चलकर आराम करते हैं।

परिव्राजकाचार्य तथा शाण्डिल्य समीपस्थ एक उद्यान की ओर विश्राम के लिए चल देते हैं। उद्यान को जाते समय रास्ते में गुरु ने शिष्य को आत्मा की गूढ़ता, पंचतत्त्वों के मर्म एवं प्राणिधर्म की शिक्षा दी। शनैः शनैः उद्यान समीप आ गया। गुरु ने शिष्य से कहा– "उद्यान में पहले तुम प्रवेश करो।" शिष्य ने प्रत्युत्तर में कहा– 'नहीं पहले आप प्रवेश करें। बाद में मैं प्रवेश करुँगा क्योंकि मैंने अपनी माँ से सुना है कि अशोक पल्लवों के मध्य व्याघ्र छिपे रहते हैं। अतः पहले भगवान् प्रवेश करें।'

उद्यान में गुरु ने पहले प्रवेश किया तत्पश्चात् शिष्य ने। प्रवेश करते समय मोर ने शिष्य का पीछा किया। शिष्य भय से आँख

मूंद कर चिल्ला उठा– 'बचाओ मैं अनाथ की भांति व्याघ्र द्वारा खाया जा रहा हूँ।' गुरु ने शाण्डिल्य के भय का निवारण करते हुए कहा– 'शाण्डिल्य! डरो नहीं, यह मोर है।' परिव्राजकाचार्य के विश्वास दिलाने पर शाण्डिल्य ने अपनी आँखें खोलते हुए कहा– "यदि यह मयूर है तो फिर मैं अपनी आँखें खोलता हूँ....। अरे मुझ दासी पुत्र के भय से व्याघ्र मयूर का रूप धारण कर भाग गया। उद्यान में चम्पक--अर्जुनादि विभिन्न प्रकार के वृक्षों की सुन्दरता को देख कर शाण्डिल्य ने उस उद्यान की रमणीयता पर आश्चर्य व्यक्त किया। उसको उस उद्यान का वातावरण बहुत ही मनोहर लगा।

उद्यान में पहुँचकर किसी स्थान पर गुरु द्वारा बैठने का विचार व्यक्त किया गया। शिष्य ने कहा यहाँ की भूमि तो अपवित्र है। कहाँ बैठा जाय? गुरु ने उत्तर दिया– 'मेध्यमरण्यदूष्या भूः[9]'। शिष्य ने कहा– यदि थक गए हैं तो बैठने की इच्छा से अपवित्र को पवित्र करें। शिष्य के इस व्यंग्य पर गुरु ने शिष्य के समक्ष श्रुति प्रमाण से अपनी बात की सार्थकता को सिद्ध किया और कहा–

प्रमाणं कुरु यल्लोके प्रमाणीक्रियते बुधैः।
नाप्रमाणं प्रमाणास्थाः करिष्यन्तीति निश्चयः[10]।।

गुरु के उक्त उपदेश पर शिष्य ने प्रमाणों के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की। गुरु ने कहा कि अध्ययन करो। अध्ययन से सब ज्ञान प्राप्त हो जाता है। शिष्य के यह कहने पर कि अध्ययन से क्या होता है, गुरू ने उत्तर दिया– अध्ययन से विज्ञान, संयम, तप, योग प्रवृत्ति अतीत–अनागत तथा वर्तमान तत्त्व आदि का बोध होता है[11]।

गुरु के इस कथन पर शाण्डिल्य ने अपनी जड़ बुद्धि की असमर्थता व्यक्त करते हुए बौद्ध विहार की सुखद स्मृतियों की चर्चा करता है[12]। परिव्राजकाचार्य कहते हैं– 'तुम व्यर्थ लोभ में फंसे हुए हो।' शाण्डिल्य खीझ कर उत्तर देता है– 'इसी कारण से तुमने भी तो सिर मुडा रक्खा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रयोजन मुझे नहीं दिखाई पड़ता[13]।" शाण्डिल्य की इस धृष्टता पर परिव्राजक ने योग की महिमा का बखान किया। शाण्डिल्य भी पीछे न रहा। उसने

कहा 'एक एव त्व समाहितो योगमेव चिन्तय अहम् सुसमाहितो ओदनमेव चिन्तयामि[14]

इस तरह के योग विषयक वार्तालाप गुरु और शिष्य (परिव्राजकाचार्य व शाण्डिल्य) के मध्य होते हैं परन्तु शिष्य पर गुरु की यौगिक शिक्षा का कोई प्रभाव न पड़ा और अन्त में उसने गुरु से कहा- कहने से कुछ नहीं होता। योग के चमत्कार को करके दिखाइये तो मानें।'

उद्यान में इसी बीच मधुकरिका तथा परभृतिका दोनों चेटियों के साथ गणिका वसन्त सेना का प्रवेश होता है। इनके प्रवेश से गुरु व शिष्य का वार्तालाप बाधित हो जाता है। गणिका वसन्तसेना का प्रणयी रामिलक अभी वहाँ आया न था। वह इस उद्यान में उसी से मिलने आयी थी। वसन्तसेना ने गोष्ठी को अधूरी देखकर असन्तोष व्यक्त किया तथा मधुकरिका से अन्यत्र गोष्ठी की अभिलाषा व्यक्त की। मधुकरिका ने उसे स्त्री के स्वाभाविक गुण की ओर **लज्जाधीरमपि स्त्रीजनम्**[15] के द्वारा संकेत करके वैसा करने का निषेध किया तथा गोष्ठी को सफल बनाने हेतु वह रामिलक को बुलाने चली गयी। मधुकरिका के जाने के पश्चात् वसन्तसेना ने परभृतिका से उद्यान में उचित स्थान पर बैठने हेतु इच्छा व्यक्त की तथा दोनों ही जाकर एक शिलापट्ट पर बैठ गयीं। परभृतिका के अनुरोध पर गणिका समय व्यतीत करने के उद्देश्य से मनोरंजनार्थ गाना गाना स्वीकार कर लिया। दोनों मिलकर संगीत गाती हैं।

गणिका के कण्ठ से परिस्फुरित गाने की मधुर ध्वनि ने शाण्डिल्य को आकर्षित कर लिया। वह उसके समीप जाने की अभिलाषा व्यक्त करने लगा। गुरु ने कुपित होकर शाण्डिल्य से कहा- शब्द का प्रयोजन केवल श्रवण से है। अतः उसके समीप जाना उचित नहीं है। इस पर शाण्डिल्य ने गुरु की अवमानना की। गुरु के क्रोधित होने पर वह कहता है- 'मा कुप्यः। अयुक्त प्रव्राजकानां कोपितुम्[16]'। शिष्य गणिका पर मुग्ध होकर कहता है- 'इदानीं पण्डितासि[17]'।

अनन्तर उद्यान में सर्प के रूप में यम पुरुष का प्रवेश होता है। वह भी गणिका के रूप-लावण्य पर मुग्ध होने से अपने को बचा न सका लेकिन वह तो साँप का रूप धारण कर यमराज के पास उसे ले जाने आया था। कर्तव्य पालन तो करना ही था। फलतः वह वहीं किसलयों के बीच में जा छिपा।

परिभृतिका ने उद्यान की दर्शनीय शोभा की ओर इशारा करते हुए वसन्तसेना से कहा- अज्जुके! अशोक के ये किसलय निश्चित रूप से दर्शनीय है। मैं इन्हें तोड़ती हूँ। गणिका ने परभृतिका को रोकते हुए कहा- 'मा मैवम् अहमेव गृह्णाम्नि[18]।' अशोक किसलय को तोड़ने हेतु ज्यों ही गणिका ने हाथ बढ़ाया सर्प रूपधारी यम ने उचित अवसर समझ कर गणिका को डस लिया।

गणिका ने परभृतिका को बताया कि मुझे किसी ने काट लिया है। परभृतिका ने वृक्ष की शाखा की ओर देख कर कहा- 'अज्जुके। एषअशोककोटरान्तरितो व्याल:[19]'। गणिका सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

अवसर पाकर शाण्डिल्य वहाँ पहुँच गया। परभृतिका से पूछता है-'यह क्या हुआ? उसने प्रत्युत्तर में बताया कि गणिका को साँप ने काट लिया है। शाण्डिल्य बड़ा दु:खी हुआ और परिव्राजक को सूचित करता है कि गणिका को साँप ने काट लिया है। परिव्राजक ने प्रत्युत्तर स्वरूप अपना विचार व्यक्त किया कि इसके क्षीण-कर्म का यह परिणाम है। कर्मफल सभी प्राणी को मिलता है।

गणिका ने परभृतिका (चेटी) को सर्पदंश से उत्पन्न अपने शारीरिक कष्ट को बताते हुए आराम करने की अभिलाषा व्यक्त की। प्रत्युत्तर में उसने कहा अज्जुका आराम करें मैं माँ को बुलाती हूँ।

शाण्डिल्य वसन्तसेना की मूर्च्छा से बड़ा दुखी हुआ। गुरु के द्वारा दी गयी सान्त्वना का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा और उल्टा उसने गुरु को अपशब्द भी कहा। शाण्डिल्य अपने को नियंत्रित न

कर सका और शोक से रोने लगा। परिव्राजकाचार्य उस पर रह रह कर कुपित होते हैं तो वह पुनः दोहराता है– 'परिव्राजकानां अयुक्तं कोपितुम्[20]'। शाण्डिल्य गणिका प्रेम में एकदम अन्धा हो गया तथा चेटी का पैर छूकर बोला– आप शीघ्र जाँय और इनकी माँ को बुला लायें। परभृतिका ने शाण्डिल्य के चरण स्पर्श करने पर उसे रोका भी परन्तु शाण्डिल्य ने स्पष्ट स्वीकार किया– 'आ आउलाउलह्मि। सीसं पादं ण जाणामि[21]'।

परभृतिका अब पूर्ण रूप से आश्वस्त हो गयी कि यह ब्राह्मण अज्जुका (वसन्तसेना) को अकेला नहीं छोड़ेगा। अतएव वह वसन्तसेना की माँ को बुलाने चली जाती है। शाण्डिल्य वसन्तसेना के पास अकेले ही विलाप करता बैठा रहा।

दूसरी ओर परिव्राजकाचार्य थोड़ी ही दूर पर बैठे बैठे मन में सोचते रहे– 'एष खलु तपस्वी कर्तव्याबोधतया आश्रमापवादं न जानाति....तदस्य प्रत्ययोत्पादनं करिष्यामीदृशो योग इति[22]'।

परिणामतः परिव्राजक ने अपनी आत्मा को यौगिक प्रक्रिया द्वारा वसन्तसेना के मृत शरीर में विनियुक्त कर दिया।

परिव्राजक के द्वारा इस प्रकार से परकाय– प्रवेश के उपरान्त वसन्तसेना उठ बैठी। उठते ही उसने परिव्राजक का सा व्यवहार करते हुए शाण्डिल्य को बुलाया। गणिका के मुख से शाण्डिल्य अपना नाम सुनकर कृतकृत्य हो उठा। उसने सोचा वसन्तसेना पुनर्जीवित हो गयी। अतः प्रफुल्लित स्वर में वह बोला– 'अयमस्मि[23]' किन्तु ज्यों ही गणिका ने कहा 'अप्रक्षालितपाणिभ्यां मा स्प्राक्षी[24]' शाण्डिल्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और बोला–'अदिचोक्खिणी खु इयं[25]'। 'अधीष्व तावत्[26]' इस प्रकार गणिका के कहने पर शाण्डिल्य ने अत्यंत परेशान होकर सोचा कि यहाँ भी अध्ययन ही करना है तो गुरु जी के पास ही क्यों न चलें? वह परिव्राजकाचार्य के पास जाता है। वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि वह तो मरे पड़े

है। उसने अपने को बहुत धिक्कारा तथा आश्चर्य पूर्वक चिन्ता करने लगा–'हा एव्वं बहु जाणन्तोवि मरन्ति[27]'।

परभृतिका गणिका की माँ को लेकर उसके समीप वापस आयी। उसने देखा कि वह बैठी है। शोकाकुल माँ ने जब गणिका के प्रति अपना दुःख व्यक्त किया और उसके समीप आयी तो उसने माँ को फटकारते हुए कहा– 'वृषल वृद्धे! मा स्प्राक्षी[28]'।

परभृतिका ने माँ से कहा– इसके ऊपर विष का प्रभाव हो चुका है। माँ ने उसे वैद्य बुलाने को कहा। वह वैद्य बुलाने चली जाती है।

परभृतिका के चले जाने के तत्काल पश्चात् ही मधुकरिका (चेटी) रामिलक को लेकर आ जाती है। रामिलक गणिका की अत्यंत अस्तव्यस्त मनोदशा देखकर दुखी होता है तथा तरह तरह से उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करता है। इसी क्षण परभृतिका भी वैद्य को लेकर आ जाती है। गणिका वैद्य जी को देखते ही उनकी तरह तरह से हंसी उड़ाती है। फलतः वैद्य जी असफल होकर तथा यह बहाना बना कर वहाँ से खसक लेते हैं कि उसे मन्त्रतन्त्रोपचार की आवश्यकता है, अतएव सुन्दरगुलिक नामक सर्प वैद्य को बुलाकर लाऊँगा।

वैद्य जी के चले जाने पर यमपुरुष पुनः उपस्थित होता है। वह किसी अन्य वसन्तसेना के स्थान पर गणिका वसन्तसेना के प्राण हर ले गया था। अतः यमलोक में यम द्वारा उसकी भर्त्सना की गयी तथा गणिका वसन्तसेना के प्राण को वापस करने हेतु वहाँ से उसे लौटा दिया गया। वह अपने अन्तर में यम द्वारा की गयी भर्त्सना के विषय में सोचता है–

न सा बसन्तसेनेयं क्षिप्रं तत्रैव नीयताम्।
अन्या वसन्तसेना या क्षीणायुस्तामिहानय।।

मृत वसन्तसेना के प्राण को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिए ज्यों ही यमपुरुष उसके समीप आया स्तब्ध सा रह गया। उसके

आश्चर्य की सीमा न रही हो उसके मुँह से फट पड़ा भुवि पूर्वं न दृश्यते[29] वसन्तसेना पहले से ही जीवित बैठी थी यम पुरुष ने कर्तव्य का बोझ सर से उतारने के लिए पाम मे ही पड़े मृत परिव्राजक के शरीर में गणिका वसन्तसेना के आहरित प्राण को प्रतिष्ठित कर दिया।

अब स्थिति और भी मनोरंजक हो गयी। मृत परिव्राजकाचार्य उठ बैठे तथा परिव्राजक की भांति व्यवहार न करके गणिका के हाव-भावों से युक्त आचरण करने लगे। उठते ही उन्होंने चेटी को बुलाया। चेटी के बदले समीप में ही उपस्थित शाण्डिल्य शोकाकुल हालत में उनके निकट पहुँचकर बोला- 'प्रत्यागणप्राणः खलु भगवन्। आतर्कयामि दुःखभागिनो न म्रियन्ते इति[30]'। परिव्राजक पुनः जब रामिलक को बुलाता है तो शाण्डिल्य के बोलने का वह निषेध करता हुआ रामिलक को बुलाकर उसको अपना आलिंगन करने को कहता है। रामिलक परिव्राजक के प्रत्युत्तर में कहता है- भगवन् यह आचरण तो आश्रम विरुद्ध है। पुनः परिव्राजक रामिलक से कहता है कि मैं सुरापान करूँगा। यह सब देख कर शाण्डिल्य भ्रमित हो सोचता है-

> भवतु परिहास प्रमाणं ज्ञास्यामि[31]।
> नैव भगवान् नैव अज्जुका[32] अथवा
> भगवदज्जुकं नाम संवृत्तम्[33]।

सर्पवैद्य का प्रवेश होता है। वह मन्त्रोपचार के द्वारा गणिका को स्वस्थ करना चाहता है परन्तु गणिका उसे भी अपने पाण्डित्य से मूर्ख बनाती है और वह वापस चला जाता है।

यमपुरुष ने परिव्राजक के प्राण विनियोग का भेद अपनी दिव्यता के बल से जान लिया था। अतः वह पुनः उपस्थित होकर गणिका के समीप जाकर बोला- भगवन! मुच्यतां वृषल्याः शरीरम्[34]। यमपुरुष के इस प्रकार के अनुरोध करने पर गणिका का शरीर

त्यागकर परिव्राजक ने अपना मूल शरीर धारण कर लिया। अब यमपुरुष परिव्राजक द्वारा रिक्त किए गए गणिका के शरीर में उसके प्राणों को संचारित कर उसको गणिका का पूर्व स्वरूप प्रदान कर अन्तर्ध्यान हो गया। फलतः अब गणिका गणिकावत् आचरण करने लगी तथा परिव्राजक, परिव्राजकवत्।

वस्तुस्रोत :-

'भगवदज्जुकीयम्' की कथावस्तु का उद्देश्य मुख्यरूप से योग के महत्व को,बौद्ध विहार में फैले हुए दुराचार-अनाचार का प्रचार कर, उससे जनता को अवगत कराना है। जनमानस पर इसका प्रभाव मार्मिक हो अतः कवि जन रंजन हेतु प्रहसन के माध्यम से इस विषय को प्रस्तुत किया। राजकुल से उसे प्रहसन प्रस्तुत करने का निर्देश भी था। प्रहसन का विषय कवि की मौलिक कल्पना है, जो कि सामायिक परिस्थितियों पर व्यंग्य है किन्तु बड़ी शिष्टता से उसका निर्वाह यहाँ किया है।

योग के महत्व का उत्कृष्ट विवरण 'महाभारत' के शान्तिपर्व में है। प्रकृत प्रहसन के कुछ स्थलों के भाव शान्तिपर्व तथा भीष्म पर्व के भावों से पर्याप्त साम्य रखते हैं-

न प्रहृष्यते लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्।
समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मः मातरिश्वनः[35]।।
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते[36]।।

भावों की तुलना करें-

सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां
भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्।
सुहृत्स्वमित्रेषु च भावतुल्यतां
वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसगताम्[37]।।

तमो रजश्च सत्त्व च विद्धि ।
जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः[38]।।

तुलना करें-

तमस्त्यक्त्वा रजो भित्वा सत्त्वस्थस्सुसमाहितः।
ध्यातुं शीघ्रं भवन्ध्यानमेतज्ज्ञानप्रयोजनम्[39]।।
अच्छेद्योऽयमादह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः[40]।।

तुलना करें-

शाण्डिल्यः

जो अजरो अमरो अछेज्जो अभेज्जो सो अत्तणाम[41]।

परकाय प्रवेश योगसूत्र का एक मनोरंजक प्रसंग है-

बन्धकरणशैथिल्यात्, प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः[42]।

परकायप्रवेश की घटनायें महाभारत में भरी पड़ी है। उशना ने कुबेर के शरीर में योग बल से प्रवेश किया था[43]। विपुल ने अपने गुरु देशवर्मन की पत्नी के शरीर में इन्द्र से उसके सतीत्व की रक्षा करने हेतु प्रवेश किया था[44]। विदुर का युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश[45] योगानन्द के परकायप्रवेश[46] तथा कवि के काल निर्णय के समय चर्चित तत्कालीन समाज में घटित परकाय प्रवेश की घटना आदि अनेकानेक यौगिक घटनाओं से कवि ने प्रेरणा ग्रहण कर प्रकृत प्रहसन की रचना की है। आत्मा के स्वतन्त्र विनियोजन से महत्तम यौगिक सिद्धि और हो ही क्या सकती है? यही कारण है कि परिव्राजक ने अपने कथन 'महन्महायोगफलं निषेव्यते' की सार्थकता प्रमाणित करने हेतु शाण्डिल्य के समक्ष योगबल से अपनी आत्मा को गणिका के शरीर में विनियोजित कर उसके भ्रम का निवारण किया।

1. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ 8, सं0 पी0 अनुजन् अचन। 2. तथैव पृष्ठ-9 3. तथैव पृष्ठ-54. 4. तथैव पृष्ठ-69. 5. तथैव-प्रीफेस 6. तथैव पृष्ठ-48. 7. तथैव पृष्ठ-17. 8. तथैव पृष्ठ-25. 9. तथैव पृष्ठ-41. 10. तथैव पृष्ठ-43. 11. तथैव पृष्ठ-45. 12. तथैव पृष्ठ-46. 13. तथैव पृष्ठ-47. 14. तथैव पृष्ठ-54. 15. तथैव पृष्ठ-57. 16. तथैव पृष्ठ-61. 17. तथैव पृष्ठ-62. 18. तथैव पृष्ठ-64. 19. तथैव पृष्ठ-66. 20. तथैव पृष्ठ-73. 21. तथैव पृष्ठ-74. 22. तथैव पृष्ठ-76 23. तथैव पृष्ठ-77. 24. तथैव तत्रैव 25. तथैव पृष्ठ-78 26. तथैव तत्रैव 27. तथैव तत्रैव. 28. तथैव त्रैव. 29. तथैव पृष्ठ-85. 30. तथैव पृष्ठ-86. 31. तथैव पृष्ठ-88. 32. तथैव पृष्ठ-87. 33. तथैव तत्रैव. 34. तथैव पृष्ठ-94. 35. महाभारत शान्तिपर्व-240/31. 36. महाभारत भीष्मपर्व-26/56. 37. भगवदज्जुकीयम्-श्लोक-7. 38. महाभारत शान्तिपर्व-241/19. 39. भगवदज्जुकीयम्-श्लोक-16. 40. महाभारत-भीष्मपर्व 26/24. 41. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ, सं0 पी0 अनुजन् अचन्। 42. पातञ्जल योगसूत्र- श्री हर्ष. 43. महाभारत-शान्तिपर्व-289/9. 44. तथैव-अनुशासन पर्व-40/40-57. 45. तथैव-आश्रम वासिक पर्व. 46. कथासरित्सागर- सोमदेव.

अध्याय 2

भगवदज्जुकीयम् के पात्र

भगवदज्जुकीयम् का प्रत्येक पात्र हास्य की दृष्टि से एक एक रत्न है, कहा जाय तो किंचिद् अत्युक्ति न होगी। प्रत्येक पात्र के चरित्र से संयत हास्य की उद्भावना तो होती ही है साथ ही वे कथा को आगे बढ़ाने में भी आवश्यक तत्त्व का काम करते हैं। प्रहसन के ये सभी पात्र अपने अपने स्थान की सार्थकता सिद्ध करते दृष्टिगोचर होते हैं।

परिव्राजक

तापस : भगवदज्जुकीयम् का परिव्राजक अन्य प्रहसनों के सन्यासियों की भांति आचरणहीन व लम्पट नहीं है। वह अपेक्षाकृत गम्भीर व शान्त प्रकृति का है। शाण्डिल्य द्वारा भला बुरा कहे जाने के उपरान्त भी आक्रोशित नहीं होता है। हाँ! योग के विषय में बतायी गयी बातों को जब शाण्डिल्य ग्रहण करने का प्रयास नहीं करता तब उसमें खीझ अवश्य उत्पन्न हो जाती है और वह शाण्डिल्य को नाधीष, न्यस्तमुसलः व्यङ्गार[1] आदि शब्दों से सम्बोधित करता है। उसकी स्वाभाविक स्थिति यहाँ किमपि शिथिल हो जाती है किन्तु परतः योग के प्रति उसकी निष्ठा भी उजागर होने से शेष नहीं रहती।

सहिष्णुता एवं संकल्पबद्धता : योग के प्रति, यदा कदा शाण्डिल्य के द्वारा विरुद्ध क्रिया कलापों से झुंझलाकर भी वह उसको अपने पास से भगाने का विचार नहीं करता अपितु अन्त तक उसमें योग के प्रति विश्वास उत्पन्न करने में प्रयत्नशील रहता है और अपने इन प्रयत्नों में वह अन्ततः सफल भी होता हैं। इस प्रकार परिव्राजक अपने विचारों में दृढ़ संकल्प वाला तथा निश्चित व्यक्तित्त्व से युक्त है। शाण्डिल्य की मूर्खता का उस पर लेश मात्र भी प्रभाव नहीं

पडता। उसने एक सच्चे गुरु की भांति योग के विषय को तरह तरह से उसको समझाने का ठीक वैसा ही प्रयास किया है जिस प्रकार कुमारिल भट्ट ने अपनी बात को मानने के लिए अन्विता-भिधानवादी[2] शिष्य प्रभाकर मीमांसक को बाध्य[3] कर दिया था। परिव्राजक को भी कुमारिल भट्ट की ही भाँति अपने योगबल की शक्ति सिद्ध करने हेतु क्षणिक मृत्यु का आश्र[illegible] ग्रहण करना पडा।

लौकिक दृष्टि : परिव्राजक दैहिक तथा [illegible]नक संतापों से अत्यधिक दुःखी है। वह भौतिक शरीर की निःसारता के मर्म 'देहो रोग निधिर्जरावशगतो' को भली भाँति समझता है।

परिव्राजक को समस्त संसार ही दोष व व्यसन में लिप्त दृष्टिगत होता है। वह इस प्रकार के विश्व में जीवन धारण करने हेतु 'अमानकामः[5]'.....भिक्षाटन करता है। अभीष्ट की सिद्धि हेतु परिव्राजक यदा तु संकल्पितमिष्टमिष्टतः[6]...के द्वारा कर्म करने की प्रेरणा देता है। उसे प्रत्येक परिस्थिति में समान आचरण करने का व्यवहार अत्यंत प्रिय है-

> **सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां**
> **भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्।**
> **सुहृत्सु मित्रेषु च भावतुल्यतां**
> **वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसंगताम्[7]।।**

मनोवैज्ञानिक जागरूकता : परिव्राजक का मनोवैज्ञानिक चिन्तन भी पर्याप्त सशक्त है। उसे भिक्षाटन के समय का पूर्ण ध्यान रहता है। वह शाण्डिल्य के 'अतिक्रामति भिक्षा वेला[8]' के प्रत्युत्तर में कहता है- 'मूर्ख! प्रातस्तावन्न मध्याह्नः[9]'। उसके इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह शाण्डिल्य की भांति पेट पूजा की चिन्ता न कर ज्ञान व ध्यान को समुचित महत्त्व देने वाला है।

योगवेदान्त पर विश्वास : आत्मा के स्वरूप के निरूपण में[10], स्थूल शरीर के पंचत्व के संबंध में[11], प्रमाणों पर व्यक्त आस्था[12], राग-द्वेष से मुक्त होने का विचार एवं उपाय[13], कर्म के अनुसार

प्रारब्ध निर्माण[14] त्रिगुणात्मक [5] प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लाभ की दीक्षा द्वारा परिव्राजक पर योग तथा वेदान्त दर्शन[16] का पूर्ण प्रभाव परिपुष्ट होता है योग दर्शन से भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति उत्पन्न होती है- उसने इस तथ्य को स्पष्ट किया है। योग की यही शक्ति मनुष्य को अष्टगुण ऐश्वर्य सम्पन्न बनाती है- 'ज्ञानाद्भवति विज्ञानं, विज्ञानात्संयम., संयमात्तपः, तपसा योगप्रवृत्तिः, योगप्रवृत्तेरतीतानागतवर्तमानतत्त्वदः भवति, एतेभ्योऽष्टगुणमैश्वर्यं लभते[17]'।

योग की इतनी सारी शक्तियों की सूक्ष्मता को वह समझता था और इसीलिए उसने योगफल को 'महन्महा[18]' कह कर संबोधित किया है।

रागात्मकता : मनुष्य होने के नाते मानवीय गुणों का समावेश कुछ आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। परन्तु हाँ! परिव्राजक होने के नाते उसमें रागात्मकता का यह सन्निवेश हास्यात्मक अवश्य हो जाता है। ऐसा ही कुछ चरित्र परिव्राजक में क्षण भर के लिए देखने को मिलता है। प्राकृतिक वनस्पतियों पर व्याप्त वसन्त ऋतु का मादक सौंदर्य उसे अब भी दुःखदायी लगता है- 'अभ्यागत किसलयाभरणो वसन्तः .यज्जीवितं हरति तत्किल रम्यमस्य[19]'।।

आत्मसंयम : रागात्मक भावना होने के उपरान्त भी परिव्राजक गणिका के प्रति अपने को तटस्थ रखता है। गणिका को देखकर वह पूर्ण रूप से संयमित है। शाण्डिल्य की भाँति वह किंचित् भी विचलित नहीं होता। सर्पदंश के पश्चात् गणिका की दुःखद स्थिति से व्याकुल व दुःखी शाण्डिल्य के रोने पर वह उसे 'न कर्तव्यमेतत्' की शिक्षा देता है। उसको औचित्य-अनौचित्य का पूर्ण ध्यान है। इसके प्रत्युत्तर में शाण्डिल्य उससे- 'निस्नेह! मामपि त्वामिव तर्कयसि' कहता है। शाण्डिल्य का यह कथन परिव्राजक के आचरण पर पूर्व प्रकाश स्वयमेव डालता है।

परकाय प्रवेश के पश्चात परिव्राजक ने अपना मूल रूप त्याग दिया था। अतः उस रूप में उसके द्वारा किया गया अस्वाभाविक

आचरण उसका मूल आचरण नहीं था, जिसके कारण कि उसके चरित्र की किसी प्रकार से आलोचना की जा सके। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गणिका का अभिनय करने में भी वह पूर्ण रूप से सफल है। उन क्षणों प्रकारान्तर से वह गणिका जो था।

परिव्राजक इस प्रहसन का महत्त्वपूर्ण पात्र है। उसका चरित्र अन्य प्रहसन के सन्यासियों की अपेक्षा उच्चकोटि का है। वसन्त ऋतु के वर्णन में उसकी रागात्मक प्रवृत्ति उत्तम कोटि के हास्य की उत्पत्ति करती है। वह स्थिति यह सिद्ध करती है कि ऋतुराज अच्छे अच्छों के संयम को विचलित करने की शक्ति रखते हैं।

परकाय प्रवेश के पश्चात् उसके द्वारा अनुकृत आचरण से 'भिन्न रुचिर्जनः' के अनुरूप षडविध हास्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रहसन में होता भी यही है– 'रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु[20]'।

भाषा : परिव्राजक के संवाद लौकिक संस्कृत में हैं। रूपक मे उच्चकोटि के पात्रों की भाषा लौकिक संस्कृत ही होनी चाहिए[21]। परिव्राजक की भी भाषा वैसी है। नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार परिव्राजक पुरुष पात्र है। इसके संवाद संस्कृत में हैं इसके संवादों में मानसिक तथा शारीरिक व्यापार की अपेक्षा शाब्दिक व्यापार का बाहुल्य है। अतः इसके संवादों में भारती वृत्ति[22] है। [भरताचार्य के मतानुसार तपस्वी अथवा सन्यासी नायक की योजना से युक्त प्रहसन शुद्ध[23] कोटि का होता है।] अभिनय की दृष्टि से परिव्राजक एक सफल पात्र है। अपने अभिनय के द्वारा वह सफल हास्य उत्पन्न कर लेता है साथ ही योग के महत्त्व को भी उसने प्रतिष्ठित करने में कोई कमी नहीं छोड़ी।

शाण्डिल्य

अनाचारी प्रवृत्ति : शाण्डिल्य परिव्राजक का शिष्य है। वह मूर्ख तथा पेटू है। वह प्राकृत बोलता है। नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार निम्नकोटि के पात्र[24] ही प्राकृत भाषा बोलते हैं। अपने पेटू

स्वभाव के कारण उसने बौद्ध विहार से पलायन[25] कर परिव्राजक का शिष्यत्व ग्रहण किया। जन्मना ब्राह्मण होने के उपरान्त भी उसका स्वभाव ब्रह्मकर्म[26] के विपरीत है। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि उसमें धर्म का कोई लोभ नहीं है। उसने केवल बुभुक्षा की शान्ति हेतु योगी की शरण स्वीकार किया है न कि धर्म के लोभ से- एक्को अहं अण्ण हदत्तणेण[27]...।

व्यंग्यकार : परिव्राजक को जहाँ सुरक्षित कर्मफल पर विश्वास है वहीं शिष्य शाण्डिल्य को उसे उसकी व उसके सिद्धान्तों की आलोचना करने में विशेष रुचि है। उसे परिव्राजक को खिझाने[28] में आनन्द का अनुभव होता है। परिव्राजक की दीक्षा का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो वह खीझ कर उसे 'नाधीषे' कहता है। इस पर शाण्डिल्य परिव्राजक के सिद्धान्तों 'सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यता' पर व्यंगय करता हुआ कहता है- 'हा हा पडिञ्आहाणियो किल भअवो[29]'।

इसी प्रकार उद्यान भूमि को भी पवित्र किए जाने हेतु- **अचोक्खंअचोक्खं वा** करेसि[30] का व्यंग्यात्मक उच्चारण करता है।

डरपोक प्रवृत्ति : शाण्डिल्य डरपोक भी कम नहीं है। वह बाघ के भ्रम में मोर से भी डरता है। अशोक पल्लवों के मध्य बाघ की कल्पना उसकी मूर्खता[31] को ही प्रकाशित करती है। बाद में वास्तविकता का बोध होने परअपनी शक्ति पर डींग मारता है[32]।

शाण्डिल्य को प्राकृतिक उपादानों का सूक्ष्म ज्ञान है- चंपअज्जुणक-दंबणीवणि उल[33]....। वह जिज्ञासु प्रकृति का भी है। यह एक अलग बात है कि उसकी जिज्ञासा में भी व्यंग्य का आभास होता है। स्थान स्थान पर वह परिव्राजक के द्वारा बतायी गयी मार्मिक बातों पर प्रश्न[34] भी करता है तथा रह रह कर पेट पूजा के लिए चौंक सा पड़ता है[35]।

रागात्मकता :उद्यान में गणिका को देख कर शाण्डिल्य की रागात्मकता उत्तेजित हो उठती है। वह विवेक शून्य सा होने लगता है। बौद्ध और योग उस क्षण वह सब भूल जाता है। परिव्राजक के नाराज होने पर 'मा कुप्प ! अजुत्तं पव्वाजआणंकुविदु[36]' कह कर वह उसे डाँट देता है।

सर्पदंश के पश्चात् गणिका को बेहोश देख कर रागात्मकता के कारण उसकी विवेक शून्यता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। वह योग द्वारा परिव्राजक से उसको पुनर्जीवित करने के उपचार हेतु अनुरोध[37] करता है। ऐसे क्षण उसकी कातरता द्रष्टव्य है।

मृत गणिका के शव के समक्ष बैठ कर वह विलाप करता है। उसके उपचार हेतु चेटी से अनुरोध करता है। उसके पैर भी छूता है। उसको विवेक है ही नहीं, क्योंकि 'कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु[38]'। उससे अधिक जागृत तो चेटी है जो उसकी इस हरकत का निषेध करती है। उसमें ऐसी विषम परिस्थिति में भी विवेक है जब कि वसन्तसेना मृतप्राय है। वह चेटी से भी गयी गुजरी स्थिति का हो गया है। रागान्ध व कामान्ध जो ठहरा-

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति।
मदोन्मत्ता न पश्यन्ति ह्यर्थी दोषं न पश्यति।।

परिव्राजक द्वारा 'परकाय-प्रवेश' के पश्चात् वह और भी विस्मित हो उठा। एक बार तो वह गणिका को उठा देखकर प्रसन्न हो जाता है। परन्तु जब गणिका उसे डाँट देती है तो वह ठिठक कर रह जाता है। उसको कुछ भी उपाय नहीं सूझता है। गणिका के विपरीत व्यवहार से उसे अत्यंत आश्चर्य होता है। मूर्खता के कारण स्थिति को वह कुछ भी नहीं समझ सका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाण्डिल्य के चरित्र में विदूषक के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। वह परिव्राजक के शिष्य के रूप में चतुर्विध विदूषकों[39] में, शिष्य कोटि[40] का विदूषक है। विदूषक की गति रूपक में हास्योत्पादक[41] होती है। वह सर्वत्र विनोद उत्पन्न

करने वाला[42] पात्र आचार्यो द्वारा स्वीकार किया गया है विनोद उत्पन्न करने में उसकी वेशभूषा विकृत आचार विचार व्यवहार एवं भाषा सभी योगकारक होते हैं।

शाण्डिल्य का हलन-चलन भी विदूषक की ही भांति सर्वत्र हास्योत्पादक है। हास्योत्पादन की ही दिशा में कवि ने उसके सारे क्रिया कलाप सामान्य से भिन्न विसंगत व विपरीत प्रस्तुत किया है। शाण्डिल्य में गुरु के प्रति निष्ठा का अभाव, गुरु को 'तुवं' संबोधित करना तथा उसे गालियाँ देना, व्यंग्यात्मक वाक्य बोलना विवेकशून्यता व रागात्मक भावना के वशीभूत हो चेटी का पैर छूना तथा गणिका की मृत्यु से कातर हो विलाप करना, डरपोक स्वभाव का प्रदर्शन करना, भुक्खड़ व पेटूपन का आचरण ग्रहण करना, व्यवहार में प्राकृत भाषा का प्रयोग, ये सब सामान्य क्रिया कलाप से विपरीत व भिन्न हैं। उसका यही तिर्यक् (अनौचित्य पूर्ण) व्यवहार प्रस्तुत प्रहसन में उसको एक सफल विदूषक बनाता है।

वसन्तसेना

साधारणस्त्री : वसन्तसेना भगवदज्जुकीयम् की प्रमुख स्त्री पात्र है। वह साधारण स्त्री[44] के रूप में ही यहाँ चित्रित है। नाट्यशास्त्रीय विधानों[45] के अनुसार वह प्रगल्भता तथा धूर्तता से युक्त न होकर एक कुलजा नारी की भाँति आचरण करती है। संगीत के प्रति उसकी रूचि उसके 'मधुमासजात' गीत से स्पष्ट होती है।

सच्ची प्रेमिका : रामिलक के प्रति वसन्त सेना का प्रेम गणिकावत् धूर्ततापूर्ण न होकर निष्कपट है। उसकी रागात्मकता 'परभृत-मधुकरनादज्याघोषः' पूत भावों से सिक्त है। अपने प्रेमी रामिलक के प्रति कृत्रिम निष्ठा का उसमें अभाव है। सर्प दंश से मूर्च्छित होते समय उसका कथन 'रामिलअं आलिंगेहि, इस तथ्य को पुष्ट करता है।

प्रकृति के प्रति अनुराग : अशोक के नव पल्लवों के प्रति आकर्षण प्रकृति के प्रति उसके अनुराग को दर्शाता है।

वसन्तसेना अपनी सहायिका चेटी को 'हञ्जे!' से सम्बोधित करती है उसका यह सम्बोधन नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुकूल है[46]।

वसन्तसेना के मृत शरीर में परिव्राजक के परकाय-प्रवेश के पश्चात् उसका अभिनय पूर्ण रूप से बदल जाता है। इस वेश में भी वह अभिनय करने में पूर्ण रूप से सफल है। उसके हाव-भाव तथा भाषा सब में परिवर्तन हो जाता है। वह ऐसे रूप में एक सफल परिव्राजक की भाँति अभिनय करती है।

गणिका संवाद प्राकृत भाषा में बोलती है तथा गायन लौकिक संस्कृत में करती है। उसका यह आचरण नाटयशास्त्रीय[47] तो है ही साथ ही उसके सभ्य व्यवहार का भी परिचायक है।

अनुशासित प्रेमिका : प्रस्तुत प्रहसन में वसन्तसेना का स्वरूप एक *अभिसारिका*[48] *नायिका का है जो अपने प्रेमी से अपनी दो सहायिकाओं* के साथ उद्यान में मिलने हेतु आयी है परन्तु उसका प्रेमी रामिलक इस निर्धारित समय पर वहाँ पहुँचा नहीं है। रामिलक के वहाँ प्राप्त न होने पर वह चिन्ता, निःश्वास, खेद, अश्रुपात वैवर्ण्य (वर्ण का फीकापन) ग्लानि तथा दैन्य[49] प्रदर्शन न कर मधुकरिका के 'लज्जा-धीरं पि इत्थि आजणं' का निर्वाह करते हुए उसे रामिलक को बुलाने हेतु भेज देती है, जिससे कि उसकी यह गोष्ठी सार्थक हो। उसमें रामिलक से मिलने की उत्कण्ठा आशा की लौ जागृत करती है। प्रतीक्षा के क्षणों में वह परभृतिका के साथ गायन करती है। वह एक कुशल गायिका है।

रागात्मकता : उद्यान में आने पर रामिलक के न मिलने पर वसन्त सेना द्वारा यह कहा जाना -'दाणि पि ण पअ्अत्ता गोट्ठी' उसकी विभिन्न रागात्मक व नुपूरक वस्तुओं की ओर ध्यानाकर्षित करता है। थोड़े में अपनी भावनाओं का अधिक व्यतीकरण उसका सहज गुण है।

वसन्तसेना के अयत्नज[50] तथा स्वभावज[51] अलंकारों के संबंध में भी कवि ने यमपुरुष तथा रामिलक के वर्णनों के माध्यम से परिचय कराने का प्रयास किया है-

मा

वरचन्दनार्द्रम्।

श्रमि तावदस्याः
मधुरवचोमुखं विशालाक्ष्याः।....

X X

वर्तय सुगात्रि मुखारविन्द–
ङ्गपरिवृत्तमिवारविन्दम्।।

ऐप्रेक्ष्यों के आधार पर कवि वसन्तसेना के चरित्र को
चित्रित करने में पूर्ण सफल है।

मधुकरिका

का, वसन्तसेना की सहायिका चेटी है। वह वसन्तसेना
। रामिलक से मिलाने का पूर्ण प्रयास करती है। उद्यान
वसन्तसेना को जब रामिलक निर्धारित स्थान पर नहीं
उसको अधीरता से बचाने के लिए कर्तव्यबोध कराती
'लज्जाधीरं पि इत्थि आजणं'। इस उचित सम्मति के
ग ने अपने नाम की सार्थकता को सुरक्षित किया है,
का के कर्तव्य के अनुकूल था।

वसन्तसेना को जब रामिलक नहीं मिलता तो वह
उसे बुलाने के लिए भेजती है। मधुकरिका रामिलक को
उसने वसन्तसेना के आदेश का निषेध न करके तत्काल
किया। वह एक आज्ञापालक भक्त सहायिका है।

। के संवाद प्राकृत भाषा में हैं। स्त्री पात्रों के संवाद प्राकृत
ाट्यशास्त्रीय है[52]। वह वसन्तसेना को 'अज्जुआ' शब्द
रती है जो कि नाट्यशास्त्रीय आदेशानुसार ही[53] है।
। का उसके प्रति 'हञ्जे' का सम्बोधन उसकी सेविका
चेटी) वृत्ति को स्पष्ट करता है। स्थान स्थान पर
प्रति उसकी भक्ति व आचरण उसके पद के अनुरूप

हो, उसके चरित्र की सफलता को उजागर करता है। वह संयत व्यापार व स्त्रियोचित गुणों से युक्त है।

इस प्रकार मधुकरिका अपने स्वाभाविक गुणों से एवं नाट्यशास्त्रीय आधारों पर एक सफल चेटी है।

परभृतिका

वसन्तसेना का परभृतिका को हञ्जे शब्द से सम्बोधन उसके सहायिका होने का संकेत देता है। परभृतिका नाट्यशास्त्रीय विधानों के अनुसार प्राकृत भाषा बोलती है। एक सेविका की भाँति परभृतिका उद्यान में स्थित वसन्तसेना का अकेलेपन में तरह तरह से मनोरंजन करने का प्रयास करती है। उसके साथ रह कर उसको गाने के लिए प्रेरित करती है तथा स्वयं भी उसके साथ साथ गाती है। प्राकृतिक उपादानों के प्रति उसमें आकर्षण उत्पन्न करके वह उसके ध्यान को रामिलक के अभाव के कारण उत्पन्न उदासी से कुछ क्षणों के लिए हटाने का प्रयास करती है।

सर्पदंश के क्षण परभृतिका घबरा कर किं कर्तव्य विमूढ़ नहीं होती। वह अत्यंत संयत है। वह घबराहट में वसन्तसेना को अकेले ही छोड़ कर उसके उपचार का उपाय ढूँढने नहीं निकल जाती। जब पूर्ण रूप से आश्वस्त हो लेती है कि शाण्डिल्य वसन्तसेना के पास से हटेगा नहीं तभी वह वहाँ से हटती है। वह अपने कर्तव्य व दायित्व के प्रति पूर्ण जागृत व एकनिष्ठ सहायिका का परिचय देती है।

आपद् के समय में पुरुष होकर भी शाण्डिल्य अपना धैर्य छोड़ देता है व विवेक खोकर परभृतिका का चरण-स्पर्श करता है लेकिन परभृतिका ऐसी नहीं है। वह इसका निषेध करती है। परभृतिका अपनी पूर्ण शालीनता का परिचय देती हुयी वैद्य व शाण्डिल्य दोनों को ही 'अअ्अ' (आर्य) शब्द से सम्बोधित करती है। ऐसा करके उसने शाण्डिल्य व वैद्य दोनों को ही अपनी अपेक्षा श्रेष्ठता प्रदान की है।

शाण्डिल्य को के पास छोड़ कर परभृतिका पहले माँ को बुलाने जाती है फिर उसके बाद वैद्य को। ऐसा करके परभृतिका ने अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता का परिचय दिया है, क्योंकि वसन्तसेना के समीप शाण्डिल्य उसका स्वजन तो था नहीं, जो उसकी समुचित देख भाल करता। अतः परभृतिका ने पहले माँ को बुलाना उचित समझा। माँ के आने के बाद ही वह वैद्य को बुलाने जाती है। इस प्रकार उसने एक सफल सेविका के पद का निर्वाह किया है।

यमपुरुष

बकुलध्यान : यमपुरुष इस प्रहसन में गणिका का प्राणाहरण करने के लिए उद्यान में अशोक के पल्लवों के मध्य सर्परूप ग्रहण करके बैठा है। वह अपने स्वामी की आज्ञा के पालन का अवसर देख रहा है।

रागात्मक व हास्यास्पद स्वरूप : अशोक शाखाओं के समीप जब वसन्तसेना पल्लवापचयन करने हेतु आयी तो उस क्षण उसके सौंदर्य को देख कर यमपुरुष भी स्तब्ध सा रह गया और क्षण भर के लिए उसमें रागात्मकता उद्दीप्त हो उठी-

श्यामां प्रसन्नवदनां मधुरप्रलापां
मत्तां विशालजघनां वरचन्दनार्द्राम्।
रक्तोत्पलाभनयनां नयनाभिरामां
क्षिप्रं नयामि यमसादनमेव बालाम्।।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यमपुरुष को दिव्य होना चाहिए पर, यहाँ पर वह ऐसा नहीं है। उसका स्वरूप लौकिक व रागात्मक है, जो कि सामान्य रूप से हास्योत्पादक है। उसके इस स्वरूप में दिव्यत्व के स्थान पर रागात्मक प्रवृत्ति अनुचित तो है परन्तु इस प्रहसन में हास्योत्पादन में यह सार्थक भी सिद्ध हुई है। यही नहीं उसके प्राण को हरने के बाद भी वह दुखी है- 'हन्त! हृताः प्राणाः। एष भो' जब कि वह यम का सेवक है। उसको स्वभावतः क्रूर होना चाहिए।

स्वामिभक्त : यमपुरुष स्वामिभक्त है। उसे अपने स्वामी का हमेशा ध्यान रहता है- भूतानि यो हरति[54]....।

ऐसे रागात्मक क्षणों में भी अपने स्वामी की आज्ञा का पालन उसे भूल नहीं जाता अन्यथा यदि उसका वश चलता तो वह संभवतः गणिका को प्राण-दान अवश्य दे देता।

यम की निष्ठुरता का ध्यान : दुखी होने के उपरान्त भी उसे अपने स्वामी का निवास वा प्राणाहरण की सूचना का पूरा ध्यान है। स्पष्ट है कि वह अपने स्वामी के कठोर दण्ड विधान के प्रति पूरी तरह सजग है अन्यथा गणिका के प्रति उसका राग निश्चित रूपेण उसको उदार बना डालता। क्रूर स्वामी के परवश जो ठहरा।

भर्त्सना जन्य दुःखी : प्राण हरण कर जब वह अपने स्वामी के पास पहुँचा तो स्वामी ने उसकी भर्त्सना की, क्योंकि उसने वांछित वसन्तसेना के स्थान पर गणिका वसन्तसेना का प्राण हर लिया था। अस्तु इस आहरित प्राण को पुनः वापस करने का आदेश उसे हुआ। वह स्वामी द्वारा की गयी भर्त्सना से दुःखी है परन्तु जब वह गणिका वसन्तसेना का प्राण वापस करने हेतु लौट कर आया तो वसन्तसेना को जीवित बैठी देखकर आश्चर्य चकित हो उठा। 'लोके भुवि पूर्व न दृश्यते[55] ऐसा सोच उसने झल्लाहट में पास पड़े परिव्राजक के मृत शरीर में गणिका के प्राण को प्रतिस्थापित कर दिया। उसने ऐसा करके आहरित प्राण को वापस करने का बोझ अपने सर से उतार दिया। यहाँ पर भी व्यवहारिक दृष्टि से उसका यह कार्य उचित नहीं है परन्तु स्वाभाविक रूप से उस क्षण उसके पास कोई और विकल्प भी नहीं था। उसकी दिव्यता यहाँ भी गायब है अन्यथा अपनी दिव्य शक्ति से वह वसन्तसेना के जीवित होने का रहस्य जान सकता था। परन्तु यदि ऐसा हो जाता तो उसके इस विपरीत आचरण से जो हास्य उत्पन्न हुआ है वह न हो पाता। अतएव कवि ने हास्य हेतु विपर्यय व असंगति को ध्यान में रख

कर जानबूझ कर उसके इस प्रकार के आचरण को प्रस्तुत किया है उसने अपने इस विपरीत आचरण का निर्वाह भली प्रकार किया है

परिस्थिति को सामान्य करने हेतु अन्त में उसमें दिव्य गुणो का समावेश भी हुआ है।

गणिका-माता

वसन्तसेना की माता यहाँ सामान्य माँ की ही भाँति दर्शायी गयी है। उसमें ममता है। वेश्या की माता की भाँति वह स्वार्थी स्वभाव की नहीं है। यदि वह ऐसे स्वभाव की होती तो वसन्तसेना के उपचार हेतु न तो चिंतित ही होती और न हि वैद्य को बुलाने हेतु चेटी से आग्रह करती। व्यवहारिक रूप से जैसा कि देखने में आता है कि वेश्याओं की मातायें द्रव्य लोलुप हुआ करती हैं लेकिन वसन्तसेना की माँ में ऐसा आचरण ही चित्रित नहीं किया गया है। गणिका के द्वारा 'वृषल वृद्धे! मा स्प्राक्षीः।' से माता के पतित चरित्र के स्वभाव के विषय में किंचित आभास प्राप्त होता है परन्तु वह परिव्राजक की दृष्टि में उसकी मनोवैज्ञानिक विचार पद्धति जनित है। वसन्तसेना के द्वारा तो वह माँ के रूप में -'अत्ते! वन्दामि' इस प्रकार से वन्द्य है। स्त्री पात्र होने के कारण माता के संवाद प्राकृत भाषा में हैं।

प्रस्तुत प्रहसन में माता के चरित्र का निर्वाह सामान्य माताओ की भांति चित्रित किया गया है। माता के आचरण व व्यवहार में कहीं भी विपरीतता दृष्टिगत नहीं होती अतः इसके अभिनय से हास्य की उत्पत्ति भी नहीं होती।

रामिलक

रामिलक वसन्तसेना का प्रेमी है। वह निर्धारित समय पर उससे मिलने उद्यान में नहीं पहुँचता। बाद में पहुंचने पर उसके सौंदर्य की विभिन्न प्रकार से चर्चा करता है तथा उसकी मूर्च्छा पर शोक व्यक्त करता है। निर्धारित समय पर उद्यान में उसका न पहुँचना उसके

दुर्बल आचरण को व्यक्त करता है। [उसका ऐसा आचरण प्रस्तुत कर कवि ने कोई अनर्थ नहीं किया। यदि वह निर्धारित समय पर उद्यान में पहुँच जाता तो कथा वस्तु के अनुरूप कवि प्रहसन को न ढाल पाता। उसका वहाँ न पहुँचना ही कथा वस्तु को गति प्रदान करता है।]

रामिलक वसन्तसेना की मूर्च्छा से मर्माहत एक प्रेमी की भांति चिंतित है। वैद्य से उसका उपचार करने हेतु वह अत्यंत कातर भाव से अनुरोध करता है।

लौकिक आचरण की सजगता : परिव्राजक के रूप में गणिका द्वारा आदेशित कार्यों के प्रति वह अत्यंत विस्मित है तथा उसे 'भगवन्। आश्रमविरुद्धः खल्वयमालापः' ऐसा कह कर कर्तव्य बोध कराता है। उसे परिव्राजक द्वारा परकाय-प्रवेश का कुछ भी आभास नहीं है। अतएव यहाँ पर रामिलक में संयमित लोक - रीति - नीति को स्पष्ट देखा जा सकता है। लौकिक धर्म के प्रति भी वह जागरुक है।

समुन्नत जीवन स्तर : रामिलक के संवाद लौकिक संस्कृत में हैं। इस प्रकार शाण्डिल्य की अपेक्षा उसका जीवन स्तर स्वाभाविक रूप से अपेक्षाकृत समुन्नत है। उसकी विचार शक्ति शाण्डिल्य की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

रामिलक का आचरण भी स्थान स्थान पर हास्य का उत्पादन करने में सहायक रहा है।

वैद्य

वैद्य जी विद्वत्ता से कोसों दूर हैं। महामूर्ख हैं। वह अपने पेशे में नाड़ी ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं समझते। वह गणिका वेशधारी परिव्राजक की अस्त व्यस्त भाषा से रोग व रोग का निदान ढूँढते हैं जो कि पूर्ण रूप से हास्यास्पद है। वह मात्र वैद्य हैं जो कि औषधियों से रोग का उपचार करता है परन्तु उन्होंने औषधि का सहारा न लेकर तन्त्र मन्त्र के द्वारा वसन्तसेना का उपचार करने का

प्रयत्न किया है यह उनके मूल पेशे के एक दम विपरीत है तथा उनकी मूर्खता को उजागर करता है। उनकी इस शास्त्रीय अनभिज्ञता की खिल्ली वसन्तसेना ने उड़ाया है। स्वाभाविक है कि उनके पास स्त्रियों जैसी बुद्धि भी न थी। औषध तन्त्र का ज्ञाता सर्पवैद्य को बुलाकर जब मान्त्रिक विधि से झाड़ फूंक का उपाय सुझाए तो यह उसकी अक्षमता को पूरी तरह उजागर करता है।

वह अपने भीतर की अज्ञानता को 'सर्प वैद्य को बुलाने के बहाने' दबा कर भाग खड़े होते हैं।

वैद्य जी की भाषा प्राकृत है। प्राकृत भाषा से ही उनके सामाजिक व बौद्धिक स्तर का निराकरण हो जाता है उच्चकोटि का पात्र कभी भी रूपक में प्राकृत नहीं बोलता। वह रामिलक से भी गए गुजरे हैं।

[हास्य की दृष्टि से इस प्रकार कवि ने अज्ञ वैद्य के चरित्र को अत्यंत सफल प्रकार से प्रस्तुत किया है। उनके आचरण में इस प्रकार की विपरीतता हास्योत्पादक है।]

सुन्दर गुलिक [सर्प वैद्य]

सुन्दर गुलिक का भी आचरण कवि ने उनके स्वभाव के विपरीत ही चित्रित किया है। वह सर्प का उपचार करने वाले वैद्य हैं। उन्हें औषधि के साथ ही उपचार में तंत्र मंत्रादि का प्रयोग भी करना चाहिए था परन्तु वह मात्र मूल-पत्रादि के साथ उपस्थित हुए हैं। गणिका उन्हें मूर्ख कहती हुयी उनकी वृद्धावस्था अर्थात् उनके अनुभव की भर्त्सना करती है। परन्तु वैद्यजी हठी हैं। वह अपनी मूर्खता का उत्तरोत्तर परिचय देते चलते हैं। उन्हें शास्त्रोपचार इस वयोवृद्धता में भी पूर्ण रूप से व शुद्ध कंठस्थ नहीं हो सका। आयुर्वेद शास्त्र पर गणिका उनसे शास्त्रार्थ कर बैठती है। वह उससे पराजित हो वहाँ से 'ण हु अम्हाणं विसओ' कहते हुए सर पर पैर रख भाग खड़े होते हैं। सर्प वैद्य का प्राकृत बोलना ही उसकी हीनता पुष्ट करता है।

कवि ने सर्व वैद्य का चरित्र भी हास्योत्पादन की दृष्टि से अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। सर्प वैद्य के क्रिया कलाप नितान्त हास्योत्पादक एवं मूर्खता पूर्ण हैं। वह भी अपने अभिनय में पूर्ण सफल हैं।

---

1. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ 25 व 26. 2.काव्यप्रकाश-आचार्य विश्वेश्वर की टीका- पृष्ठ 37 वृत्ति। 3.तथैव-पृष्ठ 38 4. भगवदज्जुकीयम्- पृष्ठ 7, श्लोक-3 5 तथैव-पृष्ठ-17. 6. तथैव-पृष्ठ-21. 7. तथैव-पृष्ठ-23 8. तथैव-पृष्ठ-25. 9 तथैव-पृष्ठ-26. 10. तथैव-पृष्ठ-28. 11. तथैव-पृष्ठ-39. 12. तथैव-पृष्ठ-43. 13 तथैव-पृष्ठ-48. 14. तथैव-पृष्ठ-67. 15. तथैव-पृष्ठ-53. 16. भारतीय दर्शन-पृष्ठ-27 व 316, म. म. डॉ. उमेश मिश्र,। 17. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ 45. 18. तथैव-पृष्ठ 47 19. तथैव-पृष्ठ-39. 20. दशरूपक-3/56. 21. तथैव-2/64. 22. तथैव-3/5 23 नाट्यशास्त्र-18/103-104. 24. दशरूपक-2/64 25. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ8

26 शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जव मेव च।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजं।।

महाभारत-भीष्मपर्व-42/42

27. भगवदज्जुकीयम्- पृष्ठ -19. 28. तथैव-पृष्ठ-25. 29. तथैव-पृष्ठ-27. 30 तथैव-पृष्ठ-42. 31. तथैव-पृष्ठ-35. 32. तथैव-पृष्ठ-37. 33. तथैव-तत्रैव. 34 तथैव-पृष्ठ-15,21,23,28,45. 35. तथैव-पृष्ठ-54 36. तथैव-पृष्ठ-61,73. 37. तथैव-पृष्ठ-76 38 मेघदूतम्-पूर्वमेघ-श्लोक-5; 39. नाट्यशास्त्र-24/16-20 40. Vidushak-G.K.Bhat 41 नाट्यशास्त्र-12/137-145. 42. विदूषकोऽपि सर्वत्र विनोदेषूपयुज्यते-भाव प्रकाश, दशम अधिकार। 43. तथैव- नवम अधिकार। 44. स्वान्या साधारणस्त्रीति-दशरूपकम्-2/15 45 साधारणस्त्री गणिका कलाप्रगल्भयधौर्त्ययुक्-दशरूपक- 2/21. 46. दशरूपकम्-2/70 47. तथैव-2/64. 48. तथैव-2/27. 49. दशरूपकम्-2/28. 50. तथैव-2/31. 51 तथैव-2/32-33. 52. दशरूपकम्-2/65 53. तथैव-2/70. 54. भगवद्ज्जुकीयम्-पृष्ठ-62 55 भगवद्ज्जुकीयम्-पृष्ठ-85.

: भाषा वैशिष्ट्य

किसी भी कृति की भाषा-शैली व उसमें निहित साहित्यशास्त्रीय-प्राग कृति व कृतिकार को अपनी कीर्ति पताका उन्नत करने में अत्यन्त सहकारी होते हैं। भगवदज्जुकीयम् अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के कारण ही प्रहसनों में रत्न स्वरूप स्वीकृत है।

(1) **सरलता, सरसता तथा मनोहरता**- सम्पूर्ण प्रहसन भाषा की इन विशेषताओं का उदाहरण है-

अमानकामः सहित व्यधर्षणः[1].., सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यता[2]. ., खपवन सलिलानां[3]..., अतिमानोन्मत्तानां[4]., प्रमाणं कुरु यल्लोके[5] ....., आदि आदि।

इनमें इन सभी गुणों के साथ ही भाषा में लक्षणा के माध्यम से सनातन धर्म के महत्त्व का ख्यापन अपने में अत्यन्त ही विशिष्ट है। सहज ही इन भावनाओं से युक्त लोगों को अपनी ओर केन्द्रित कर लेता है।

(2) **भाषा पर अधिकार**- कवि बोधायन का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह सुन्दर भावों को प्राञ्जल भाषा में निबद्ध करता है। उसके शब्द छोटे व सारगर्भित हैं।

ज्ञानमूलं तपः सारं[6]....., अभ्यागतः किसलयाभरणो वसन्तः[7] ..., यदा तु संकल्पितं[8].....,

प्राकृत भाषा पर भी कवि का पूर्ण आधिपत्य है। इस भाषा मे भी सरलता का पूरा ध्यान कवि द्वारा रक्खा गया है- ण माम ओ अत्थि ण भादुओ वा[9]।

(3) **ध्वन्यात्मकता**- कवि ने भावों को संक्षिप्त व मार्मिक ढंग से अभिव्यंजित किया है। व्यंजना के द्वारा स्थान स्थान पर आध्यात्मिक

तत्त्वो को अत्यन्त [illegible] पूर्वक ग्रहण किया गया है। कदम कदम पर कवि के कथन में दार्शनिक बातें स्पष्टतः सनातन धर्म की मान्यताओं को ध्वनित करती हैं- सुखेषु दुःखेषु च....., अमानकामः सहित.... यःस्वप्ने गगनमुपैति.... में आध्यात्मिक व दार्शनिक बातों का ध्वनन स्पष्टतः दर्शनीय है। वसन्त के आगमन पर रसात्मकता की ध्वनि स्वयमेव प्रस्फुटित होना स्वाभाविक सी हो जाती है- अभ्यागतः किसलयाभरणो वसन्तः। स्थान स्थान पर तरह तरह क अन्तर्निहित भावों का ध्वनन कृति की भाषायी विशेषता है।

कवि ने संवादों में प्रायः छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है। पात्रों के वार्तालाप की शैली अत्यंत रोचक है। वाक्य असमस्त परम्परा मे तथ सुबोध हैं। भाषा पात्रों के अनुकूल प्रयुक्त हुयी है। उच्चकोटि के पात्र (परिव्राजक) द्वारा संयत व मर्यादित भाषा प्रयुक्त है। ये सभी पात्र लौकिकसंस्कृत भाषी हैं। हीन कोटि के पात्र प्राकृत भाषी हैं। संवादों में साधारण बोल चाल की भाषा का ही प्रयोग किया गया है। वाक्य छोटे व बोध गम्य होने के कारण सहज व गत्यात्मक हैं-

परिव्राजक[10] : आगच्छ वत्स। अधीष्व तावत्।

शाण्डिल्यः ण दाव अज्झइस्सं। (न तावदध्येष्ये)

परिव्राजकः किमर्थम्

शाण्डिल्यः अज्झ अणस्स दाव अत्थं सोदुमिच्छामि। (अध्ययनस्य तावदर्थं श्रोतुमिच्छिामि।)

परिव्राजकः अधीताध्ययनैरपि कालान्तरविज्ञेया भवन्त्यध्ययनार्थाः। तस्मादधीष्व तावत्।

शाण्डिल्यः अधीदे कि भविस्सदि। (अधीते कि भविष्यति)

X X X

गणिका[11]: हञ्जे! महुअरिए! महुअरिए! कहिं कहिं रामिलओ। (हञ्जे! मधुकरिके मधुरिके! कुत्र कुत्र रामिलकः)

चेटीः अज्जुए। अं अं। आअच्छामित्ति भणिउ ण अरं एव्वं पविट्ठो आवुत्तो (अज्जुके! अहमागच्छामीति। भणित्वा नगरमेव प्रविष्ट आवुत्तः।)

गणिकाः हञ्जे किं णु खु भवे। (हञ्जे! किं नु खलु भवेत्।)

चेटीः किमञ्जं गोट्ठिं तुवारेदुं। (किमन्यत् गोष्ठीं तु त्वरयितुम्।)

गणिकाः दाणिं पि ण पअ्अत्ता गोट्ठी। (इदानीमपि न पर्याप्ता गोष्ठी)

शाण्डिल्य के संवाद कहीं कहीं पर बड़े वाक्यों वाले हैं परन्तु इन संवादों की भाषा बोधगम्य है- 'अविहा! दासीए वुत्तो[12]...

(4) **सूक्तियों का प्रयोग**- स्थान स्थान पर सूक्तियों के प्रयोग द्वारा कवि ने भावों में पर्याप्त गम्भीरता का समावेश किया है। लक्ष्य-सन्धान में ये सूक्तियाँ अत्यंत सहायक हुयी हैं, साथ ही इनके कारण भाषा को मार्मिक आवरण भी प्राप्त हुआ है। कुछ प्रमुख सूक्तियाँ-

1. सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां।
2. न प्रामाणं प्रमाणस्थाः करिष्यन्तीति निश्चयः।
3. स्वकर्म भोक्तुं जायन्ते प्रायेणैव हि जन्तवः।
4. यदा तु संकल्पितमिष्टमिष्टतः।
5. ये निर्ममा मोक्षमनुप्रपन्ना।

(5) **वर्णन कुशलता**- कवि बोधायन में असाधारण वर्णन कुशलता दृष्टिगत होती है। उसकी भाषा में वस्तु स्थान अथवा घटना का सजीव चित्र खींचने की अनुपम शक्ति है। शाण्डिल्य के द्वारा वासन्ती उद्यान की रमणीयता का चित्रण, यमपुरुष के द्वारा धर्म देश (यमपुरी) के मार्ग का चित्रण तथा सर्पदंश के पश्चात् गणिका के मूर्च्छित होते शरीर का चित्रण अत्यंत मार्मिक व सहज आकर्षण उत्पन्न करता है। यमपुरुष के द्वारा चित्रित धर्मदेश का मार्ग तो मन में एक प्रकार की उत्कण्ठा पैदा कर देता है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने सचमुच ही उस रास्ते के माध्यम से यमपुरी का मार्ग खोज निकाला हो।

(6) **अलंकार योजना**- प्रकृत प्रहसन में कवि ने रूपक (श्लोक 10,18,23), उत्प्रेक्षा (22, 23, 25, 27, 28, 36 श्लोक), अर्थान्तरन्यास

(11, 13, 14, 16, 20 व 26 श्लोक), अनुप्रास (4 व 7 श्लोक), उल्लेख (14, 15, 20, 25 श्लोक), विषम (13 श्लोक), भ्रान्तिमान (30 श्लोक) तथा विशेषोक्ति (1 श्लोक) आदि अलंकारों का प्रमुख रूप से प्रयोग किया है। इनमें से कतिपय श्लोक तो ऐसे हैं जिनमें दो-दो या तीन अलंकारों की भी योजना है।

(7) रसोन्मेष : यह कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि इसका अंगीरस हास्य है। श्रृंगार का भी बाहुल्य देखने को मिलता है। यम पुरुष की रागात्मक प्रवृत्ति श्रृंगार व उस स्थान विशेष पर हास्य दोनों की ही आधायक है। गणिका की मृत्यु करुण रस का संचार करती है। परकाय प्रवेश का प्रकरण अद्‌भुत रस के वातावरण का भी सफलता पूर्वक उद्‌घाटन करता है।

(8) प्राकृत भाषा : परिव्राजक, रामिलक तथा यमपुरुष के अतिरिक्त सभी पात्र प्राकृत भाषी हैं। इसमें शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग है परन्तु पी0 अनुजन अचन की सम्पादित पुस्तक में प्रयुक्त प्राकृत तथा देवभाषा प्रकाशन प्रयाग से मुद्रित प्रति में प्रयुक्त प्राकृत में अन्तर है। अचन द्वारा संपादित प्रहसन में प्राकृत्त की लेखन शैली पर दाक्षिणात्य उच्चारण व प्रभाव स्पष्ट है जब कि देव भाषा प्रकाशन की प्रति में प्राकृत भाषा का स्वरूप संस्कृत के अन्य रूपकों की भाँति सामान्य तथा स्वाभाविक है। ऐसा प्रतीत होता है कि जयन्त मंगलम् पुस्तकालय में प्राप्त इसकी टीका में टीकाकार ने प्राकृत्त भाषा को कुछ क्षेत्रीय आवरण प्रदान कर कृति में दाक्षिणात्य वैशिष्ट्य उत्पन्न करने का प्रयास किया था।

---

1. भगवद्दज्जुकीयम्- पृ0-17. 2. तथैव-पृष्ठ-23. 3. तथैव-पृष्ठ-31. 4 तथैव-पृष्ठ-42. 5. तथैव-पृष्ठ-43. 6. तथैव-पृष्ठ-48 7. थैव- पृष्ठ-39. 8 तथैव-पृष्ठ-21. 9. तथैव-पृष्ठ-18. 10. तथैव-पृष्ठ-44 11. तथैव-पृष्ठ-56. 12 तथैव-पृष्ठ-37.

अध्याय –4

भगवदज्जुकीयम्: नाट्यशास्त्रीय विवेचन

कवि बोधायन का भगवदज्जुकीयम् प्रहसन–रत्न के नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः प्रस्तुत प्रहसन का भाव पक्ष है भी ऐसा ही। कला–पक्ष भी इसका कुछ घट कर नहीं है। दोनों ही पक्ष एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता करते से प्रतीत होते हैं। क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक, क्या आध्यात्मिक और क्या दार्शनिक? किसी भी दृष्टि से प्रहसन के वैशिष्ट्य को चुनौती नहीं दी जा सकती। आइए, रत्न कहे जाने वाले इस प्रहसन को नाट्यशास्त्रीय कसौटियों पर भी थोड़ा कस व साध कर देखें।

भगवदज्जुकीयम् के आमुख में सूत्रधार तथा विदूषक की वार्ता से स्पष्ट है कि यह प्रहसन रूपक है। प्रहसन की कथावस्तु उत्पाद्य होती है। सन्धि मुख व निर्वहण, सन्ध्यङ्ग, लास्याङ्ग, भारती तथा कैशिकी वृत्ति से युक्त इस रूपक का विधान आचार्यों द्वारा भाण, विथी तथा अङ्क के समान ही निर्दिष्ट किया गया है[1]।

अर्थ प्रकृतियाँ[2]

भगवदज्जुकीयम् में परिव्राजक द्वारा योग के महत्त्व का प्रतिपादन ही इसकी आधिकारिक कथावस्तु है। यह पूर्णतया योग के महत्त्व पर आधारित है तथा उत्पाद्य[3] है। योग के महत्त्व का बहुविध प्रकाशन ही कथा का बीज[4] है।

परिव्राजक के विश्राम के क्षण ही, उद्यान में चेटी के साथ गणिका का प्रवेश, शाण्डिल्य का गणिका के प्रति आकर्षित होना, सर्प–रूप धारण कर यमपुरुष द्वारा गणिका को काटने की घटना मूल कथा का बिन्दु[5] है। जो कि कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है। यहाँ शाण्डिल्य का कथन 'अघं ते योगस्य फलम्' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सर्पदंश के पश्चात् गणिका के शरीर मे परिव्राजक का आत्मिक विनियोग, यम द्वारा तिरस्कृत होकर गणिका वसन्तसेना के प्राण का, यमपुरुष द्वारा क्षणिक (योगशक्ति के सहारे) परिव्राजक के शरीर में प्रतिस्थापन, रामिलक, माता, वैद्य व सर्प-वैद्य का प्रवेश प्रासङ्गिक कथा वृत्त का अंश है। यही अंश अत्यन्त सुष्ठु हास्य उत्पन्न कर प्रहसन के प्रयोजन को भी सार्थक करता है।

परिव्राजक व शाण्डिल्य के मध्य उपस्थित गणिकाजन्य रोचक कथा-वृत्त जो कि परिव्राजक के द्वारा गणिका के शरीर में यौगिक प्रवेश तथा योग के महत्त्व को अन्तिम रूप से सिद्ध करने तक व्याप्त है; प्रासङ्गिक कथा का पताका[6] भाग है। इस कथा के मध्य में आने वाले छोटे छोटे प्रासङ्गिक कथानक जैसे रामिलक व माता का प्रवेश, वैद्य तथा सर्पवैद्य का प्रवेश व उपचार का प्रयास, यमपुरुष का पुनः प्रवेश व उसके द्वारा दिव्यशक्ति का प्रयोग प्रकरी[7] के अन्तर्गत हैं। शाण्डिल्य (विदूषक) में योग की शक्ति के प्रति विश्वास का उत्पन्न होना कार्य[8] प्रकृति है।

अवस्थायें[9]

प्रहसन में आरम्भ तथा फलागम की अवस्थायें मुख्य होती हैं। प्रस्तुत प्रहसन में परिव्राजक में योग के प्रति प्रारम्भ से ही सकारात्मक भाव विद्यमान हैं- चरामि दोषव्यसनोत्तरं जग.....। वह निरन्तर अपने इस विचार की शिक्षा शिष्य को देता है परन्तु शिष्य में, योग के प्रति विश्वास सहज में उत्पन्न नहीं हो पा रहा था। उसमें कभी कभी इस योग को जानने समझने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हो जाया करती थी। उसके भीतर उत्पन्न होने वाली यह जिज्ञासा ही शाण्डिल्य में योग के प्रति विश्वास का आरम्भ[10] है। फलतः वह गुरु से कहता है कि योग की शक्ति को दिखायें तो मानें। शिष्य का यह कथन फलागम तक गुरु को पहुँचाता है।

गुरु (परिव्राजक) के द्वारा योगबल से परकाय-प्रवेश करना तथा उसके इस प्रयास द्वारा शाण्डिल्य में योग की शक्ति में विश्वास उत्पन्न होना फलागम[11] की अवस्था है।

सन्धियाँ[12]

प्रहसन मे मुख[13] एव निर्वहण सन्धि [4] के विधान का निर्देश नाट्यशास्त्रीय मे है यह सन्धिविधान भाणवत् है भाण[15] में भी यही सन्धियाँ निर्दिष्ट हैं।

परिव्राजक ने तो प्रारम्भ से ही सुख–दुःख में तटस्थ रहने की बात कहकर योग का सैद्धान्तिक बीजारोपण किया है परन्तु शाण्डिल्य में योग के प्रति क्षणिक विश्वास उस समय अंकुरित हुआ जब कि उसने सर्पदंश से मूर्च्छित गणिका का उपचार करने हेतु परिव्राजक (गुरु) से इस प्रकार कहा– 'भगवन्[16]! किं चिकित्स्यतां तावदेषा अनाथा तपस्विनी अथवा अयं ते योगस्य फलम्'। कथा का यह अंश मुखसन्धि के अन्तर्गत है।

शाण्डिल्य की उक्त चुनौती के फलस्वरूप ही परिव्राजक ने आत्मगत रूप से योग के महत्त्व को, शाण्डिल्य के समक्ष व्यवहारिक रूप से प्रतिपादित करने का निश्चय किया। तदनुसार परिव्राजक ने गणिका के शरीर में योग की शक्ति से प्रवेश करके शाण्डिल्य के भ्रम का निवारण किया। शाण्डिल्य में योग के प्रति विश्वास का उत्पन्न होना तथा परिव्राजक का अपने इस लक्ष्य में सिद्ध होना निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत है।

वृत्तियाँ[17]

भरताचार्य ने नाटक तथा प्रकरण के अतिरिक्त अन्य रूपकों के कैशिकी वृत्ति[18] से रहित[19] होने का निर्देश किया है। दशरूपक[20] व साहित्यदर्पण[21] में भाण तथा प्रहसन में प्रायः भारती वृत्ति[22] का तथा कभी कभी कैशिकी वृत्ति का भी निर्देश है। प्रस्तुत प्रहसन में पुरुष पात्रों के संवाद में सर्वथा भारती वृत्ति है।

उद्यान में रामिलक के न मिलने पर गणिका द्वारा किया गया गायन नर्म कैशिकी वृत्ति का आत्मोपक्षेप कहा जा सकता है।

लास्याङ्ग[23]

शोक एवं चिन्ता से दुखी वसन्तसेना (गणिका) का परभृतिका के साथ बिना वाद्य व आङ्गिक अभिनय के गायन 'आसीन' नामक लास्याङ्ग का लक्षण है।

वीथ्यङ्ग या प्रहसनाङ्ग

उपर्युक्त के अतिरिक्त सिङ्गभूपाल ने प्रहसन के दश विशिष्ट अङ्गो की भी व्याख्या की है जो निम्न प्रकारेण है -

विशेषेण दशांगानि कल्पयेदत्र तानि तु।
अवलगितमवस्कन्दो व्यवहारो विप्रलम्भ उपपत्तिः ।।277।।
भयमनृतं विभ्रान्तिर्गद्‌गदवाक् च प्रलापश्च ।
पूर्वमात्मगृहीतस्य समाचारस्य मोहतः।।278।। -नाटकपरिभाषा

धनञ्जय ने सङ्कीर्ण प्रहसन को वीथ्यङ्गयुक्त बताया है वीथी के तेरह अङ्ग है[24] उद्घात्यक, अवलगित, प्रपंच, त्रिगत, छलन, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार, तथा मृदव। इन्हीं तेरह अङ्गो में प्रहसन के अङ्ग भी अन्तर्भूत हैं। अतः वीथी के इन अङ्गो का सामान्यतया प्रहसनों में मिलना स्वाभाविक है। इनके मिलने का आशय यह नहीं है कि जिन प्रहसनों में ये अङ्ग लक्षण हैं वे प्रहसन संकीर्ण होंगे। अतः इनके अनुसार भी प्रस्तुत प्रहसन का निरूपण किया जाना समीचीन है -

परिव्राजक के द्वारा योग बल से गणिका के शरीर में प्रवेश की घटना से शाण्डिल्य में योगशक्ति के प्रति विश्वास का उत्पन्न होना अवलगित[25] है।

परिव्राजक व शाण्डिल्य का गूढ़ वार्तालाप उद्घात्यक[26] तथा उनमें योग व बौद्ध सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बारंबार उत्तर प्रत्युत्तर वाक्केलि[27] है।

शाण्डिल्य द्वारा परिव्राजक का शिष्यत्व ग्रहण करना एक प्रकार से छलन[28] है। परिव्राजक को यह आभास नहीं था कि यह पेटपूजा हेतु शिष्यत्व ग्रहण कर रहा है।

परिव्राजक द्वारा, शारीरिक दुर्बलता के कारण नैराश्यपूर्ण रागात्मकता का द्योतन गण्ड[29] का लक्षण है।

शाण्डिल्य द्वारा बौद्धविहार की दोषपूर्ण परिस्थितियों की प्रशंसा तथा योग पर उपहास मृदव[30] है।

नाट्यशास्त्रीय मतानुसार प्रहसन भाणवत् होता है। अस्तु इसमें लास्याङ्ग की योजना अधिकाधिक होनी चाहिए। परन्तु प्रस्तुत प्रहसन में लास्य के दश अङ्गों में से मात्र एक आसीन[31] नामक अङ्ग ही स्पष्ट देखने को मिलता है। वीथ्यङ्ग भी अत्यन्त न्यून ही हैं। इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से सम्यक् अङ्गो का दर्शन कृति में नहीं हो पाता है। अतः इसके एकाङ्की रूपक होने का भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से सम्यग् विचारोपरान्त प्रस्तुत प्रहसन पूर्णरूपेण एक सफल कृति है। लास्याङ्ग व वीथ्यङ्ग के सम्पूर्ण अङ्गो का प्रहसन में मिलना कोई आवश्यक तत्त्व नहीं है। इन अङ्गो का क्रमानुसार मिलना भी प्रहसन में आवश्यक नहीं है। इनमें क्रम भङ्ग हो सकता है। प्रहसन का आवश्यक तत्त्व उसका रस है। इसका अङ्गी रस हास्य होता है। भगवदज्जुकीयम् का अंङ्गी रस भी हास्य ही है। प्रस्तुत कृति में स्वतन्त्र रूप से हास्योत्पादन तो कवि ने किया ही है, साथ ही शृंगार, अद्भुत व करुण रस के माध्यम से भी कवि ने विपर्यय के सहारे सफल हास्य उत्पन्न किया है जो कि उसकी कुशलता व शास्त्रीय प्रगल्भता को पुष्ट करता है।

पात्र

प्रस्तुत प्रहसन में शाण्डिल्य के आचरण द्वारा कवि ने प्रमुख रूप से हास्य योजना का विधान किया है। शाण्डिल्य में विदूषको के पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं। यह मूर्ख है। पेटू है। उद्दण्ड है। उसकी यह प्रकृति प्रहसन में स्थान स्थान पर असङ्गत वातावरण उत्पन्न कर हास्योद्भावन करती है। यह चतुर्विध विदूषकों में शिष्यकोटि का ब्राह्मण विदूषक है। पोच व कामुक है। उसके ये सभी लक्षण

हास्योत्पादन की दृष्टि से कवि द्वारा अत्यन्त संयत शैली में प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे कि प्रहसन में अश्लीलता का समावेश नहीं होने पाया है। इसकी भाषा प्राकृत है। विदूषक द्वारा तथा हीन पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का सम्भाषण नाट्यशास्त्रीय विधानानुकूल है।

परिव्राजक शिक्षित व दार्शनिक है। शिक्षित पात्र के द्वारा कवि ने लौकिक संस्कृत में संवाद प्रस्तुत किया है। गणिका वसन्तसेना ने भी लौकिक संस्कृत में ही सम्भाषण किया है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त दोनों ही पात्रों का लौकिक संस्कृत में संवाद न्यायोचित है।

भगवदज्जुकीयम् नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध प्रहसन है। **शुद्ध प्रहसन**[32] में भगवत् अथवा तापस आदि का चरित्र चित्रित होता है। प्रहसन में पात्रों के आचरण द्वारा ही प्रमुख रूप से हास्य उत्पन्न किया जाता है, परिव्राजक तथा शाण्डिल्य दोनों ऐसे ही पात्र हैं। इसके अन्य पात्रों के आचरण द्वारा भी हास्य की सतत् उत्पत्ति हुयी है। परिव्राजक का आचरण भगवत् अथवा तापस की भाँति अंकित है। शाण्डिल्य उसे 'भगवन्' शब्द से ही सम्बोधित भी करता है। धनञ्जय के अनुसार यह **विकृत प्रहसन**[33] होगा, क्योंकि दशरूपक में तपस्वियों का चरित्र विकृत प्रहसन के रूप में चित्रित है। सागरनन्दी तथा सिङ्गभूपाल इसे **संकीर्ण प्रहसन**[34] के रूप में ही स्वीकार करते हैं।

---

1. प्रहसन परम्परा और बोधायन का भगवदज्जुकीयम्, अध्याय–1, प्रथम–भाग।

2. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरी कार्यलक्षणाः।
   अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एता परिकीर्तितः।। दशरूपकम्–1/18

3 प्रहसन परम्परा और बोधायन का भगवदज्जुकीयम्, अध्याय–1, द्वितीय भाग;। 4. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। दशरूपकम्–1/17. 5. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्–वही–1/17. 6. सानुबन्धं पताकाख्यम्–वही–1/13. 7. ... प्रकरी च प्रदेशभाक्–वही–वही 8. फलं कार्यमिदं शुद्धं मिश्रं व कल्पयेत्सुधीः।। नाटक परिभाषा–सिङ्गभूपाल

9 अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
  आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। दशरूपकम्–1/19.10.
  औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। दशरूपकम्–1/20

11 समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः। वही– 1/22

12 अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।।
यथासांख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः। वही-1/22-23

13 मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।। वही-1/24

14 बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्। वही-1/48-49.

15 भाणः तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा।
यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः।।
सम्बोधनोक्तिप्रत्युक्ती कार्यादाकाशभाषितैः।
सूचयेद्वीर शृंङ्गारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवे।।
भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्कं वस्तुकल्पितम्।
मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च।। वही-3/49-51.

16 भगवदज्जुकीयम्- पृष्ठ-76, सं0 पी0 अनुजन् अचन, सन् 1925. 17. तत् (नायकस्य) व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्था - दशरूपकम् - 2/47. 18. गीतनृत्यविलासद्यैर्मृदुः शृगारचेष्टितैः ।। वही - वहीं

19 भाणः समवकारश्च तथेहामृग एव च
उत्सृष्टिकाङ्को व्यायोगी वीथी प्रहसनं डिमः।।18।।
कैशिकीवृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत् ।।19।। नाट्यशास्त्रम्,अ. 18

20 दशरूपकम् 3/49 - 51. 21. तत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती।। 230 ।। 'प्रायेण भारती, क्वापि कैशिक्यपि वृत्तिर्भवति' - साहित्यदर्पणः, परिच्छेद - 6. 22 भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।। दशरूपकम् - 3/5. 23 लास्याङ्गानि दशैतस्मिन् संयोज्यान्यत्र तानि तु।। नाटक परिभाषा- 244 व 245, सिङ्गभूपाल। 24 दशरूपकम् - 3/12 - 21.

25 यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत् प्रसाध्यते।।
प्रस्तुतेऽन्यत्रवान्यत्स्यात्तच्चावलगितं द्विधा। वही - 3/14 -15

26 गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा ।।
यत्रान्योन्यं समालापो द्वेधोद्घत्यं तदुच्यते। वही - 3/13 - 14

27. विनिवृत्यास्य वाक्केलि : द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ।। वही - 3/17 28 प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनात् छलम्। वही-3/17. 29. गण्डः प्रस्तुत-सम्बन्धिभिन्नार्थं सहसोदितम् । वही - 3/18. 30. दोषाः गुणा गुणा दोषा यत्रस्युर्मृदवं तत् । वही - 3/21.

31 भ्रूनेत्रपाणिचरणविलासाभिनयात्मकम्।
योग्यमासीनया पाठ्यमासीनं तदुदाहृतम् ।। नाटक परिभाषा - सिङ्गभूपाल

32. नाट्यशास्त्र - 20/104 - 105, सं0 - श्री बाबू लाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा सस्कृत संस्थान, वाराणसी. 33. दशरूपक- तृतीयप्रकाश 55-56. 34. नाटक परिभाषा-287 सिंगभूपाल.

अध्याय –5

भगवदज्जुकीयम् : परकायप्रवेश और मनोवैज्ञानिक दृष्टि

'भगवदज्जुकीयम्' प्रहसन में कवि बोधायन ने मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं का स्पर्श अत्यन्त कौशल से किया है। कवि द्वारा स्पर्श किए गए ये बिन्दु प्रहसन की कथा में मर्म भरते हैं। अस्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन बिन्दुओं की चिन्ता एक आवश्यक तथा गम्भीर विषय है। विषय का गाम्भीर्य तब और भी सूक्ष्म चिन्तन का घटक बन जाता है जब 'भगवदज्जुकीयम्' के साथ 'प्रहसनरत्न' का विशेषण संयुक्त हो जाता है। वस्तुतः इस गम्भीरता की समीक्षा इस दृष्टि से समीचीन भी है। प्रहसन के पूर्ण सफल होने में इसका विशिष्ट योग है इन्हीं तमाम कारणों से इस कृति का 'प्रहसन–रत्न' की संज्ञा से अभिहित किया जाना यथार्थ है। आइए अब इसके जायज़ की ओर चलें।

'राजकुले तव प्रेक्षा भविष्यति' को ध्यान में रखकर ही प्रेक्षकों व पार्षदों के पूर्ण मनोरञ्जनार्थ कवि ने प्रहसन की रचना की। प्रहसन का अङ्गीरस हास्य है। कवि ने अन्य जनों की अभिरुचि का भी सम्यक् ध्यान रखकर शृङ्गार, करुण तथा अद्‌भुत रस का समावेश भी इसमें गौण रूप से किया है।

कवि ने कृति को मात्र हास्यात्मक न बना कर योग व परकाय प्रवेश को इसमें स्थान देकर इसे सारगर्भित भी कर दिया है।

कवि बोधायन ने, परिव्राजक के मुख से योग को 'महन्महा' कहलवाया है। अतः परिव्राजक की इस उक्ति की प्रमाणिकता भी उसको सिद्ध करनी ही थी। परिणामतः इसके लिए उसने परिव्राजक द्वारा 'योगबल' से मृत गणिका वसन्तसेना के शरीर में (आत्मा के विनियोग द्वारा) प्रवेश' की घटना प्रस्तुत किया तथा तत्क्षण ही

परिव्राजक के रिक्त पड़े शरीर मे यमपुरुष द्वारा गणिका के आहृत प्राण का प्रतिस्थापन प्रस्तुत किया गया।

योग के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए कवि यमपुरुष के माध्यम से, रामिलक या किसी अन्य पात्र का प्राणाहरण करा कर उसके पार्थिव शरीर में परिव्राजक द्वारा 'आत्मा के विनियोग' का प्रकरण प्रस्तुत कर सकता था और इसके विपरीत परिव्राजक के शरीर में आहृत प्राण वाले पात्र की आत्मा को पुनःस्थापित करा सकता था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया, क्यों?

इस विकल्प में विचाराधीन तथ्य यह है कि क्या वह ऐसा करके इस प्रकार का जीवन्त हास्य उत्पन्न कर पाता जैसा कि कवि द्वारा गणिका के रूप में परिव्राजक तथा परिव्राजक के रूप में गणिका को प्रस्तुत करके, किया गया है?

प्रत्युत्तर में यही कहना पड़ता है कि वह इस कोटि का हास्य कदापि न उत्पन्न कर पाता। क्योंकि–

1. उपर्युक्त विकल्प द्वारा कवि येन केन प्रकारेण योग को 'महन्महा' तो प्रस्तुत कर देता परन्तु सफल हास्य का उत्पादन न हो पाता।

2. गणिका के शरीर में परिव्राजक की आत्मा का विनियोग कर कवि ने शाण्डिल्य के चरित्र को विदूषक के रूप में उद्भासित किया है। यदि उसने गणिका के स्थान पर रामिलक अथवा किसी अन्य पात्र के शरीर में परिव्राजक की आत्मा का विनियोग प्रस्तुत किया होता तो शाण्डिल्य के चरित्र में विदूषकत्व उत्पन्न ही न हो पाता। जैसी चारित्रिक दुर्बलता व मूर्खतापूर्ण आचरण का उसने परिचय दिया है, वह कदापि न हो पाता। वह मात्र एक शिष्य बन कर रह जाता। हास्य के गौण होने पर यह कृति प्रहसन रूपक न बन पाती।

कवि ने गणिका में परिव्राजक की आत्मा तथा परिव्राजक में गणिका की आत्मा को प्रतिस्थापित ही नहीं किया वरन् तदनुसार मर्यादा का पूर्ण निर्वाह भी किया है। परिव्राजक, गणिका के रूप में भी तथैव (परिव्राजक की ही भाँति) आचरण एवं लौकिक

संस्कृत का व्यवहार करता है। गणिका भी, परिव्राजक के रूप में यथावत् अर्थात् गणिका की भांति आचरण एवं प्राकृत भाषण करती है परिव्राजक तथा गणिका के इस प्रकार के आचरण एवं परिवर्तित हाव-भाव के द्वारा उच्च कोटि के हास्य की भी उत्पत्ति हुयी है साथ ही योग की शक्ति भी सुचारु रूप से प्रमाणित हुयी है।

कवि ने 'परकाय-प्रवेश' के द्वारा योग के सूक्ष्म तत्त्वों का यथा- प्रमाणों का[1], भौतिक शरीर का संगठन[2], तम रज तथा सत् गुणों का विवेचन[3], तथा कृतकर्म[4] के फल का समुचित विश्लेषण भी किया है।

परिव्राजक द्वारा गणिका के शरीर में आत्मा का विनियोग किया जाना था, अतः इसके लिए गणिका के शरीर को निर्जीव करने हेतु सर्परूपी यमपुरुष का विधान कर कवि ने सर्पदंश की घटना प्रस्तुत की। सर्प का निवास प्रायः पेड़ पौधों व फूलों के मध्य हुआ करता है, अतः उसने वाटिका में छिपे सर्प द्वारा पुष्प तोड़ती गणिका का सर्पदंश दिखाया।

गणिका की आत्मा को परिव्राजक के शरीर में प्रतिष्ठित कर कवि को विविध प्रकार से प्रहसन की सार्थकता सिद्ध कर हास्य उत्पन्न करना था। अतः उसने यमपुरुष के द्वारा अन्य वसन्तसेना के स्थान पर गणिका वसन्तसेना का प्राणाहरण प्रस्तुत किया है।

मृत गणिका के शरीर में परिव्राजक ने अवसर पाकर अपनी आत्मा को विनियुक्त कर दिया और गणिका उठ बैठी।

अब परिव्राजक का शरीर निश्चेष्ट हो गया था। यमपुरुष अन्य गणिका (वसन्तसेना) का प्राण हर ले गया था। अतः उसे वहाँ वापस करने हेतु आदेश हुआ। वह आहरित प्राण गणिका को वापस करने आया तो उसे उठी देखकर उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। वह भ्रमित हो गया। उसे कोई विकल्प न सूझा और उसने पास पड़े परिव्राजक के निश्चेष्ट शरीर में ही गणिका का प्राण प्रतिष्ठित कर दिया। फलतः परिव्राजक भी उठ बैठा। वह गणिका की तरह व्यवहार करने लगा।

गणिका उठ कर अपने परिजनों के समक्ष अनर्गल प्रलाप करने लगी। शाण्डिल्य से सान्निध्य होने के कारण उसने पहले शाण्डिल्य को ही बुलाया और पढ़ने के लिए कहा। परिवार के सदस्यों ने सोचा कि गणिका पर विष का प्रभाव हो गया है। परिस्थितिवश उपचार हेतु वैद्य को बुलाया गया। गणिका ने वैद्य को मूर्ख बना दिया तो सर्पवैद्य का प्रबन्ध किया गया। सर्पवैद्य ने तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग कर गणिका का उपचार करना चाहा परन्तु वह भी व्यर्थ हुआ। कवि ने उक्त स्थान पर समसामयिक प्रचलित तंत्र-मंत्रादि पर आधारित लोगों के विश्वास को भी इसी माध्यम से पुष्ट किया।

नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार रूपक का अन्त सुखात्मक होना चाहिए। इसके निर्वाह हेतु कवि ने यमपुरुष की दिव्यता को स्पष्ट किया। यमपुरुष ने अपनी दिव्यता से परिव्राजक द्वारा 'परकायप्रवेश' के इस मर्म को समझ लिया तथा परिव्राजक से मूलरूप धारण करने हेतु अनुरोध किया। परिव्राजक ने वैसा ही किया। अब यमपुरुष ने गणिका (वसन्त सेना) के शरीर में उसका आहत प्राण प्रतिष्ठित कर दिया।

कवि ने बौद्ध विहार से पलायित ब्राह्मण शाण्डिल्य के आचरण पर भी सम्यक् ध्यान रक्खा है। वह पूर्व में ब्राह्मण परिवार का था अतएव उसको 'यज्ञोपवीत'[5] का भी ध्यान है। विहार से पलायन के बाद भी वहाँ का संस्कार वह भूला नहीं है। इसलिए कवि ने उसके हाथ में 'छत्र'[6] दिया है। रह रह कर वह विनयपिटक के 'बुद्धं धम्मं संघं सरणं गच्छामि[7]...' को याद कर लेता है, यह कवि की विषय संबंधी मनोवैज्ञानिक प्रवीणता का द्योतक है।

---

1. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ-43 सं. पी. अनुजन् अचन. 2. तथैव-पृष्ठ-3. 3 तथैव-पृष्ठ-53. 4. तथैव-पृष्ठ-20. 5. तथैव-पृष्ठ-8. 6. तथैव-तथैव. 7. तथैव-पृष्ठ-53

अध्याय -6

भगवदज्जुकीयम् : हास्यरस की दृष्टि से विवेचन

हास्य तत्त्व प्रहसन रूपक का एक मुख्य तत्त्व होता है। इसके स्वरूप पर ही प्रहसन रूपक की गुणवत्ता आधारित होती है। हास्य के उद्भावन हेतु अपनायी गयी वस्तु रचना की शैली कृति व कृतिकार दोनों के ही विषय में काफी कुछ बोध करा देती है। अन्तः तत्त्व जो होता है इसका! इसी को तो समीक्षक पकड़ता है।

भगवद्ज्जुकीयम् का वस्तु-विधान अन्य प्रहसनों की अपेक्षा एकदम भिन्न व विलक्षण है। कवि ने इसकी कथा का विन्यास ही ऐसा प्रस्तुत किया है कि उससे सहज हास्य का मद्धिम स्रोत प्रस्फुटित हो उठता है। कथा का मर्म ही तो उसकी छवि को द्विगुणित करता है यदि ऐसा कहा जाय तो शब्दावली कुछ हल्की होगी। अतएव इसका सामञ्जस्य इसे अनुपम कृति का स्वरूप प्रदान करता है। भूरिशः प्रशंसनीय यह प्रहसन संस्कृत प्रहसनों के मध्य 'प्रहसनरत्न' के रूप में सुविख्यात है। अतएव हास्य रस की दृष्टि से इसकी परख किञ्चिद् असंगत तो नहीं ही होगी।

प्रहसन का अङ्गीरस[1] हास्य होता है तथा इस विधा में षड्विद्य हास्य का विधान[2] आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट है। अन्य रसों की भाँति हास्य के विधान में भी अभिनय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विपर्यय[3], सङ्गति, अनौचित्य, वक्रोक्ति तथा व्यंग्यादि हास्य को उत्पन्न करते हैं तथा चतुर्विध अभिनय[4] इसके स्वरूप को सुदृढ़ बनाते हैं।

आङ्गिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनय साधारणतया दृश्य होते हैं। अतः इनके द्वारा रस का परिपोष मञ्च पर अधिक सफलता पूर्वक प्रस्तुत होता है। वाचिक अभिनय श्रव्य है। अतः इसका आनन्द सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

वसन्तऋतु की शोभा को देख कर परिव्राजक में उत्पन्न रागात्मक अभिव्यक्ति यद्यपि कि शृङ्गार परक है परन्तु परिव्राजकीय गुणों के विपरीत है; अतः परिव्राजक में उत्पन्न होने वाला यह रागात्मक भाव हास्य उत्पन्न करता है। स्वभावतः परिव्राजक को रागद्वेष रहित होना चाहिए। वह शाण्डिल्य को शिक्षा भी ऐसी ही देता है लेकिन कवि बोधायन ने यहाँ उसकी रागात्मक भावना की झांकी प्रस्तुत की है। अस्तु इस स्थल पर रसिकों में हास्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परिव्राजक यहाँ आलम्बन[5] तथा एतदर्थ उसकी चेष्टायें उद्दीपन[6] विभाव हैं। अपनी भावनाओं को अत्यन्त शिथिल ढंग से व्यक्त करना अनुभाव[7] है। हीयमान इन्द्रियों के प्रति उसमें उत्पन्न ग्लानि एवं असूया हास्य के व्यभिचारी[8] हैं।

हास्य का स्वरूप कैसा है, यह बात कभी कभी दर्शक अथवा श्रोता के स्वभाव पर भी निर्भर करती है। गम्भीर स्वभाव के व्यक्तियो में यह उत्तम हास्य उत्पन्न कर सकता है। परन्तु निम्न अथवा मध्यम कोटि के व्यक्तियों में यह क्रमशः अधम[9] व मध्यम[10] कोटि के हास्य का भी उत्पादन करेगा। रसास्वादन तो रसिकों के स्वभाव के अनुकूल होगा क्योंकि 'भिन्नरुचिर्हि लोकः'।

गणिका वसन्तसेना को देखकर यमपुरुष का उस पर आकर्षित हो जाना भी ऐसा ही दृष्टान्त है। यहाँ पर हास्य की सीमा और भी अधिक विस्तार पा लेती है, जब कि प्राणाहरण के पश्चात् भी उत्थिता गणिका को देख कर वह (यमपुरुष) अनायास ही कह उठता है– 'भुवि पूर्वं न दृश्यते'। स्वाभाविक दृष्टि से यमपुरुष को दिव्य होना चाहिए था परन्तु यहाँ पर कवि ने उसके व्यवहार में असंगति प्रस्तुत करके हास्य की उत्पत्ति की है।

परिव्राजक द्वारा परकाय प्रवेश के पश्चात् मूर्च्छित गणिका का उठ बैठना तथा निश्चेष्ट शरीर में यमपुरुष द्वारा गणिका वसन्तसेना के प्राण को प्रतिष्ठित करने के उपरान्त परिव्राजक का भी उठ बैठना अद्भुत है। कवि ने इस अद्भुत परिस्थिति को भी अत्यन्त

[illegible] पूर्वक हास्योद्भावक बना दिया है। इस अद्भुत घटना के पश्चात् परिव्राजक का गणिकावत् व्यवहार तथा गणिका का परिव्राजकवत् व्यवहार रसिकों में त्रिविध हास्य को उत्पन्न करने वाला अत्यंत मनोहर प्रकरण है। इस प्रकरण को देख शाण्डिल्य की किंकर्तव्य विमूढ़ता परिस्थिति को और भी अधिक हास्यास्पद बना देती है।

प्रहसन में पात्रों के वैयक्तिक आचरण अपेक्षाकृत उतने अधिक हास्योत्पादक नहीं हैं जितना कि विशिष्ट घटनायें। शाण्डिल्य का अपना मूर्खतापूर्ण वैयक्तिक आचरण पर्याप्त हास्योद्भावक है। गुरु के प्रति उसका उद्धत तथा निरंकुश व्यवहार हास्योत्पादक तो है परन्तु इस प्रकार से उत्पन्न हास्य सामान्यतया अधम कोटि का ही कहा जाएगा। इसमें उत्तम[11] कोटि के हास्य की अनुभूति तो कदापि नहीं है। उसके द्वारा परभृतिका के चरण स्पर्श की घटना भी इसी प्रकार के हास्य की जननी है।

वैद्य तथा सुन्दर गुलिका नामक सर्पवैद्य का आचरण प्रहसन में यथास्थान सामान्यतया मध्यम कोटि के हास्य को उत्पन्न करता है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार रसिकों को अन्य प्रकार के हास्य की भी अभिव्यक्ति हो सकती है। इसके लिए कवि ने कहीं प्रतिबंध थोडी न लगा रक्खा है।

इस प्रकार सम्यक् अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत प्रहसन का अङ्गीरस हास्य है। प्रहसन में षड्विद्य हास्य का विधान प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है। अन्य रसों की भांति हास्य भी रसिकों में उत्पन्न होता है। रसिकों में अपने अपने स्वरूप एवं रुचि के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि के हास्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अतएव भगवदज्जुकीयम् प्रहसन में भी दर्शकों व रसिकों की रुचि के अनुरूप षड्विध हास्य का समावेश स्वयं सिद्ध है। क्योंकि कवि का उद्देश्य था प्रहसन की रचना, करना। जिसका निर्वाह कवि ने अपनी इस कृति में किया है। स्वाभाविक है कि कवि ने कृति में जब हास्य रस का संचार कर दिया तो रसिक उसको ग्रहण करने में कब चूकेगा? इस तरह कवि प्रहसन रचना के अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है।

1 अङ्गी हास्यरसस्तत्र–साहित्यदर्पणः 6/265, विश्वनाथ कविरा

2 रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधहास्य एव तु–दशरूपकम् 3/56 धन

x x x

स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम्।

द्वौ द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्याधमप्रकृतौ।। नाट्यशास्त्रम्–6/53

3 विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहका भवेद्। साहित्यदर्पणः – 3/

4 भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।

आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा। वही–6/2.

5 विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।

तदत्रालम्बनं प्राहुः... ....।। वही –3/215

6 तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।। वही–वहीं।

7 अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः। वही–3/216

8 निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः।। वही–वहीं.

9 अधमानामपहसितं ह्यतिहसितं चापि विज्ञेयम्।। 54 ।।

अस्थानहसितं यत्तु साश्रुनेत्रं तथैव च

उत्कम्पितांसकशिरस्तच्चापहसितं भवेत्।। 59 ।।

संरब्धसाश्रुनेत्रं च विकृष्टस्वरमुद्धतम्

करोपगूढपार्श्वं च तच्चातिहसितं भवेत्।।60।। नाट्यशास्त्रम्–3

10 मध्यमानां विहसितोपहसिते।।54.

आकुंचिताक्षिगण्डं यत्सस्वनं मधुरं तथा।

कालागतं सास्यरागं तद्वै विहसितं भवेत्।। 57।।

उत्फुल्लनासिकं यत्तु जिह्मदृष्टिनिरीक्षितम्।

नेकुञ्चितांसकशिरस्तच्चोपहसितं भवेत्।। 58 ।। वही–वहीं

11 स्मितहसिते ज्येष्ठानां.......।। 54 ।।

ईषत्विकसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः।

अलक्षितद्विजं धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत्।। 55 ।।

उत्फुल्लाननेत्रं तु गण्डैर्विकसितैरथ।

किंचिल्लक्षितदन्तं च हसितं तद्विधीयते।। 56 ।। वही–वहीं

अध्याय -7

भगवदज्जुकीयम् : कतिपय विश्रुत प्रहसनों से तुलनात्मक समीक्षा

प्रहसन साहित्य के इतिहास में भगवदज्जुकीयम् प्रहसन का नाम अत्यन्त समादर से उद्धृत किया जाता है। कारण एक नहीं अपितु अनेक हैं। जब से यह प्रहसन प्रकाश में आया है तभी से साहित्यिकों के बीच विशेषरूप से चर्चा का विषय बना हुआ है। परन्तु एतद्विषयक चर्चा आज भी अधूरी ही लगती है। नहीं कह सकते कि आचार्य बलदेव उपाध्याय की दृष्टि से यह कैसे ओझल हो गया। फिर भी इसकी समीक्षा व चर्चा आज भी वैसी ही प्रासङ्गिक व महत्त्वपूर्ण लगती है जैसे अनेक व्याख्याओं के उपरान्त भी काव्यप्रकाश की है। प्रस्तुत अध्याय में इस प्रहसन की कतिपय अन्य विश्रुत प्रहसनों से तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

[क] दामक प्रहसनम्

दामक प्रहसन भास की चौदहवीं कृति के रूप में सम्प्रति कतिपय विद्वानों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है[1]। इसकी कथावस्तु उत्पाद्य तो है परन्तु इसका पात्र महाभारत का प्रख्यात अङ्गराज कर्ण है। इसमें अङ्गराज कर्ण ने अपने मित्र दामक की मन्त्रणा पर परशुराम मुनि से छल द्वारा शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास किया है। परशुराम ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण को शास्त्रों की शिक्षा नहीं देते थे। अस्तु शास्त्र-शिक्षा ग्रहण करने हेतु दानवीर कर्ण को ऐसा छल करना पड़ा। परशुराम मुनि से भी उनका छल छिपा न रह सका। उन्होंने शीघ्र ही परिस्थिति को पहचान लिया।

भगवदज्जुकीयम् की कथावस्तु नितान्त काल्पनिक (उत्पाद्य) है। यह योगबल की महत्ती विचारशक्ति के समर्थन पर आधारित है। दामक प्रहसन का प्रारम्भ भी इसी की भांति नान्दी पाठ से पूर्व नाद्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः वाक्य से होता है तथा प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग है। भगवदज्जुकीयम् में इसके लिए आमुखम्[2] का प्रयोग किया गया है तथा इसके आमुख में सूत्रधार तथा विदूषक की वार्ता है[3]। दामक प्रहसन में सूत्रधार तथा नटी की वार्ता है–

[नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य]

नटी– आर्य इयमस्मि त्वया सहोद्यानवनं गन्तुकामा। कः कालस्त्वामन्विष्य। नन्विदानीमार्येण

सूत्रधार– आर्ये तिष्ठतु तावदुद्यानगमनचिन्ता। इदानीं....

भास के अन्य नाटकों में भी[4] प्रस्तावना में सूत्रधार तथा नटी की वार्ता है।

भगवदज्जुकीयम् का कोई भी अंश अन्यत्र कहीं किसी भी रूपक से साम्य नहीं रखता है जब कि दामक में तथा भास के ही कर्णभारम् के वाक्यों में कहीं कहीं पर पर्याप्त साम्य है।

दामक प्रहसन में प्राचीन भारतीय आश्रम वासियों का जीवन– 'भोः सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं......' चित्रित है जब कि भगवदज्जुकीयम् में बौद्धधर्म के पराभवकालीन समाज व पथभ्रष्ट शाक्य श्रमणकों के आचरण–'आहारप्रमादः सर्व प्रमादः[5]' तथा योग के प्रति सवर्ण समाज की आस्था– 'महन्महायोगफलं निषेव्यते[6]'। सामाजिकों का तंत्र–मंत्र के प्रति विशेष आकर्षण– 'वातिका पैत्तिकाश्चैव[7]' भी इसमें स्पष्ट किया गया है।

भगवदज्जुकीयम् के भरत वाक्य का एक श्लोक श्री हर्ष के नागानन्द नाटक में अक्षरशः प्रयुक्त है[8] जब कि दामक प्रहसन का नान्दी श्लोक कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पर्याप्त साम्य रखता है–

सवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम्।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान्[9]।।

दामक प्रहसन में दामक अंगराज कर्ण का मित्र है, जिसका क्रिया कलाप हास्योत्पादक है। अतः वह मित्र कोटि का विदूषक है[10]। भगवदज्जुकीयम् का शाण्डिल्य[11] शिष्य कोटि का विदूषक है[12]।

भगवदज्जुकीयम् की सम्पूर्ण कथावस्तु से हास्य की उत्पत्ति होती है[13] जब कि दामक का वार्तालाप ही हास्योत्पादन करता है। हास्य की दृष्टि से दामक प्रहसन पूर्ण रूप से मुखरित नहीं हो सका है[14]।

[ख] मत्तविलास प्रहसनम्

मत्तविलास प्रहसन की प्रस्तावना[15] में सूत्रधार तथा नटी की वार्ता है। इसमें भी नान्दी पाठ, प्रस्तावना तथा भरतवाक्य का विधान कवि द्वारा किया गया है। मत्तविलास प्रहसन में सूत्रधार ने श्री सिंहविष्णु वर्मा के पुत्र श्री महेन्द्रविक्रम वर्मा विरचित रूपक के अभिनय का संकेत नियमानुसार किया है परन्तु भगवदज्जुकीयम् में रचयिता के नाम का आद्योपान्त कोई संकेत नहीं है। मत्तविलास में हास्य का उत्पादन पात्रों द्वारा हुआ है लेकिन भगवदज्जुकीयम् में कथावस्तु हास्योत्पादन में विशेष सहायिका है।

मत्तविलास प्रहसन में कापालिक के चरित्र में धार्मिक कटुता का आभास होता है[16]। वह जैन मतावलम्बियों पर आक्षेप करता दृष्टिगत होता है परन्तु भगवदज्जुकीयम् के परिव्राजक ने किसी भी धर्म पर तीखा प्रहार न करके अपने योग की शक्ति को प्रत्यक्ष रूप से सशक्त सिद्ध कर दिया है। उसकी इस शक्ति के समक्ष अन्य विचार पद्धतियाँ स्वयमेव निर्बल सिद्ध हो जाती हैं और बौद्धमत से प्रभावित शाण्डिल्य को उस पर (परिव्राजक पर) विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

शैव मतावलम्बियों का सुरापान एवं स्त्री समागम उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की अपेक्षा समाज को पथभ्रष्ट करने वाला अधिक था। भगवदज्जुकीयम् में इस प्रकार के हीन आचरण को स्थान नहीं मिल सका है, जिसमें उपासना का मार्ग सुरापान व स्त्री समागम का आध ार ग्रहण कर चलता हो। इस प्रहसन में कवि बोधायन ने योग की

प्रबल शक्ति-ज्ञान, विज्ञान एव सयम आदि को बताया है। जिसका निर्वाह परिव्राजक ने अपने आचरण में किया भी है।

मत्तविलास युगीन समाज के साधक दूषित विचार पद्धति के कारण सुरापान तथा स्त्रीसमागम को मोक्ष का मार्ग मानते थे। सामाजिकों के समक्ष जैसा आदर्श प्रस्तुत होगा उनके द्वारा उसका अनुकरण स्वाभाविक है। भगवदज्जुकीयम् युगीन समाज में इस प्रकार के सुरापान व स्त्री समागम का स्वतंत्र प्रचलन न था अन्यथा परिव्राजक भी इन सब दुर्वृत्तियों को ग्रहण किए होता।

भगवदज्जुकीयम् कालीन सामन्तवादी समाज में मत्तविलास युगीन समाज की भाँति व्यक्ति में लम्पटतापूर्ण आचरण अपेक्षाकृत कम है। बल्कि यह कहा जाय कि उसका कुछ ठोस आधार नहीं है तो किञ्चित अन्यथा न होगा। मत्तविलास युगीन समाज में तो न्यायविद ही घूसखोर[17] हो गए थे तो सामाजिक प्राणी में लम्पटता की प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक था।

उक्त तथ्य ही इस बात को भी पुष्ट करते हैं कि भगवदज्जुकीयम् काल में समाज में व्यक्ति का नैतिक स्तर ऊँचा था तथा धीरे धीरे वह गिरता गया। इस दृष्टि कोण से भी भगवदज्जुकीयम् अपेक्षाकृत इससे पूर्व की रचना है। कपाल की चोरी का सन्देह व न्यायालय जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान में घूस का प्रचलन परवर्ती समाज के लोगों के आचरण के पराभव का प्रतीक है।

मत्तविलास युग में बौद्ध भिक्षुओं का अपेक्षाकृत अधिक पतन हो गया था। उसको अपने इस दुष्कृत्य का आभास भी है। क्यों कि वह अपने दुष्कृत्यों को वृद्धजनों की दृष्टि बचाकर करता है[18]। इसके विपरीत भगवदज्जुकीयम् का शाण्डिल्य मानवीय दुर्बलताओ के इतना समीप नहीं था। गणिका के प्रति उसका प्रेम उसकी मूर्खता का परिचायक है न कि उसकी चारित्रिक दुर्बलता का।

मत्तविलास प्रहसन में भी वाक्य तथा संवाद छोटे हैं। परन्तु भगवदज्जुकीयम् की भाँति भावगाम्भीर्य अपेक्षाकृत कम है। शैली सरस एवं सरल है। माधुर्य एवं प्रसाद गुणों से युक्त है।

[ग] लटकमेलकम् प्रहसनम्

कवि शङ्खधर विरचित यह प्रहसन दो अङ्कों का है जब कि भगवदज्जुकीयम् एकाङ्की प्रहसन है।

लटकमेलकम् की प्रस्तावना में कवि ने मात्र सूत्रधार के माध्यम से रचना व रचयिता का परिचय दिया है। इसमें नटी अथवा विदूषक से उसकी वार्ता नहीं होती। प्रस्तावना में कवि ने आत्मप्रशस्ति का अनुकरण कर अपना और अपनी रचना का परिचय दिया है[19]।

भगवदज्जुकीयम् में कवि ने आत्मप्रशस्ति का मार्ग ही नहीं अपनाया। उसने प्रस्तावना में सूत्रधार तथा नटी की वार्ता द्वारा प्रहसन के अभिनय का सङ्केत दिया है।

आचार भ्रष्ट लोगों की भ्रष्टता का लटकमेलकम् में कवि द्वारा पर्दाफाश किया गया है[20]। जैन मतावलम्बियों की आपसी कटुता को कवि ने समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। बौद्ध मतावलंम्बियों के ढोंगीपन को भी उसने किंचित छिपाने का प्रयास नहीं किया। लटकमेलक का आशय धूर्तों का सम्मेलन है। इसकी यथार्थता का कवि ने प्रहसन की कथा में पूर्ण निर्वाह किया है। पात्रों का चरित्र उनके नामों में ही झलकता है[21]। गुरु–शिष्य की प्रेम कहानी के माध्यम से कवि ने सामाजिक आचरण के पराभव का कटु चित्र खींचा है। कृति में अश्लीलत्व के ये ही कारण हैं।

भगवदज्जुकीयम् में समाज के लोग इस तरह के पथभ्रष्ट नहीं है। इसमें गुरु शिष्य के साथ मिलकर वेश्यागमन नहीं करता अपितु उसे सदाचार की शिक्षा देता है। योगबल के महत्त्व के प्रति आकर्षित करने का प्रयास करता है।

लटकमेलकम् में कुछ ऐसी शब्दावलियाँ[22] भी प्रयुक्त हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध किया गया है। परन्तु भगवदज्जुकीयम् में ऐतिहासिक शब्दावली के स्थान पर ऐतिहासिक स्थानों का नाम अवश्य प्रयुक्त है। लटकमेलक प्रहसन में वाक्य एवं संवाद भगवदज्जुकीयम् की ही भाँति छोटे हैं। श्लोकों में अपेक्षाकृत क्लिष्टत्व है। समासों के अधिक भार को कृति पर नहीं लादा गया है।

बोधायन की भांति ही रूपक के प्रारम्भ में कवि ने शिव की स्तुति की है। भरतवाक्य में लटकमेलककार ने कवियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं के मंगल की कामना[23] विशेष रूप से की है जब कि भगवदज्जुकीयम् में जगत के कल्याण[24] की कामना निहित है। दोनों ही रूपकों की कथावस्तु उत्पाद्य है।

[घ] धूर्तसमागम प्रहसनम्

कवि ज्योतिरीश्वर ने इस प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार व नटी की वार्ता प्रस्तुत की है। यहीं पर ही कवि ने अपना व अपनी रचना का परिचय दिया है[25]। प्रहसन दो अंको में है। नान्दी पाठ में शिव की स्तुति की गयी है। भारत वाक्य में पृथ्वी के शस्यश्यामला होने, राजाओं के धर्मपालक होने तथा जनता के मंगल की कामना की गयी है। रूपक की सम्पूर्ण कथावस्तु कल्पना प्रसूत तथा शृंगारिक है। इसमें कामभावना सर्वत्र व्याप्त है[26]। प्रहसन माधुर्य एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है। भगवदज्जुकीयम् की कथावस्तु उत्पाद्य है परन्तु इसमें कामभावना की प्रचुरता का कहीं भी आभास नहीं होता।

धूर्त समागम में दुष्ट परिव्राजक विश्वनगर और उसके शिष्य दुराचार के बीच सुन्दरी वेश्या अनङ्गसेना के कारण कलह में व्याप्त है। इसमें पात्रों का चरित्र अत्यन्त दूषित एवं धूर्तता परक है। यह प्रहसन लटक मेलक प्रहसन के अधिक समीप है। भावगाम्भीर्य की दृष्टि से यह भगवदज्जुकीयम् के किचिंद् भी समीप नहीं है। हाँ! ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व साहित्यकारों व समीक्षकों द्वारा अवश्य मान्य है[27]।

भाषा बोधगम्य है। वाक्य बहुत बड़े व समासों से बोझिल नहीं हैं। भगवदज्जुकीयम् अपने विभिन्न गुणों के कारण प्रहसनरत्न के नाम से प्रख्यात है।

[च] हास्यार्णव प्रहसनम्

जगदीश्वर भट्टाचार्य विरचित हास्यार्णव प्रहसन दो अंको का है। प्रहसन की प्रस्तावना में भगवदज्जुकीयम् की भांति सूत्रधार तथा

विदूषक की वार्ता न होकर सूत्रधार व नटी की वार्ता है। इसमें एक कामी राजा अनयसिन्धु की चरित्र हीनता की कथा है। कथा नितान्त काल्पनिक है। यह प्रहसन 18वीं खीष्टाब्दी की रचना है। अतः इसमें भी समसामयिक विलासिता का स्पष्ट व पर्याप्त चित्रण है जैसा कि भगवदज्जुकीयम् में अत्यन्त न्यून है। हस्यार्णव प्रहसन में कलहांकुर का वैष्णवधर्म का उपदेश अत्यन्त रोचक होने के साथ ही साथ लोगों में धार्मिक पराभव का भी संकेत देता है। इसमें राजा से नौकर तक सभी पथभ्रष्ट व चरित्रहीन हैं परन्तु भगवदज्जुकीयम् में ऐसा चरित्र ही नहीं है। जहाँ पात्र समग्र आचरणहीनता के शिकार हों। भगवदज्जुकीयम् में तो कलापक्ष व भावपक्ष दोनों ही सबल हैं परन्तु हास्यार्णव प्रहसन में भावपक्ष कुछ है ही नहीं। हास्योत्पादन का आधार इसमें इसका कलापक्ष है। इसके पात्रों के अनौचित्य पूर्ण एवं प्रकृतिविपरीत कथनों द्वारा कवि ने हास्य सृजित किया है परन्तु भगवदज्जुकीयम् की तो कथावस्तु का विन्यास ही हास्योत्पादक है। भावों की गम्भीरता तो इसको द्विगुणित करती है। यदि यह कहा जाय कि भगवदज्जुकीयम् व हास्यार्णव प्रहसन का कोई साम्य ही नहीं है तो कुछ असंगत नहीं प्रतीत होता।

दोनों ही प्रहसन प्रसाद तथा माधुर्य गुण सम्पन्न हैं। भाषा सरल, बोधगम्य, एवं लघु संवादों से युक्त है। हास्यार्णव प्रहसन के श्लोकों में अपेक्षाकृत क्लिष्टत्व अधिक है। क्लिष्टत्व का दोष कृति की लोकप्रियता को सामान्यतया प्रभावित तो करता ही है।

[छ] हास्यचूड़ामणि प्रहसनम्

हास्यचूड़ामणि प्रहसन की कथावस्तु भी नाट्यशास्त्रीय विधानानुसार उत्पाद्य है। कामुक तथा धूर्त पात्रों के चरित्र से कवि वत्सराज ने इस प्रहसन को सज्जित किया है। प्रस्तावना में सूत्रधार तथा पारिपार्श्वक की वार्ता है। भरत वाक्य में संसार के सुखी होने की कामना की गयी है। भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार तथा विदूषक का वार्तालाप है।

हास्यचूड़ामणि प्रहसन ऊपर के अन्य प्रहसनों की अपेक्षा शिल्पविधान तथा मनोवैज्ञानिक योजना की दृष्टि से भिन्न है। भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की ही भांति इसका भी मनोवैज्ञानिक पक्ष अत्यन्त रोचक है। चोरी गए धन के लिए कपटकेलि जब ज्ञानराशि के पास पहुँची, ज्ञानराशि ने अपनी धूर्तता का परिचय देते हुए केवली विचार के स्थान पर ग्रहकुण्डली के विचार से धन मिल जाने का सन्देह व्यक्त किया। पुनश्च कपटकेलि ने जब घर के लोगों के नाम क्रमशः बताये तो ज्ञानराशि के द्वारा चोर का नाम बताए जाने में बहुत ही सुन्दर व मनोवैज्ञानिक चिन्तन से युक्त रीति द्वारा उस का पता बताया गया। यह रीति उत्तम कोटि के हास्य को भी उत्पन्न करने वाली है।

ठीक ऐसी ही रोचक तथा मनोवैज्ञानिक योजना से युक्त दृश्य उस समय भी उपस्थित होता है जब कि शिष्य ने कोकिल आदि पात्रों के कोप से गुरु को-बचाने के लिए यह कहा–

कौण्डिन्यः (साक्रन्दं दीर्घं निश्वस्य) णिअणि अट्ठाणेसु चिट्ठन्तु णिहाणइं। किलिम्मदु दालिद्ददूमिओ लोओ उव्वरमदि णाणरासी।

कोकिलः (सस्पृहम्) रे रे जाणादि तुह अअज्झाओ णिहाणाइं।

कौण्डिन्यः को न एत्थ एदिणा कअत्थीकदो[25]।

गुरु और शिष्य के मध्य उपस्थित व्यवहार भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की अपेक्षा हीन आचरण से युक्त है; क्यों कि भगवदज्जुकीयम् का परिव्राजक, हास्यचूड़ामणि के ज्ञानराशि की भांति धूर्त, कामी व कपटी नहीं है।

हास्यचूड़ामणि प्रहसन में कवि समाज की विषम परिस्थितियों का भण्डाफोड़ करने में पूर्ण सफल है। भगवदज्जुकीयम् की अपेक्षा इसकी भाषा कुछ क्लिष्ट व संवाद बड़े हैं। शृंगार का आभास भी कम है। वसन्तसेना की भांति मदनसुन्दरी भी संवाद प्राकृतभाषा में बोलती है तथा गायन लौकिक संस्कृत में।

[ज] गौरीदिगम्बरप्रहसनम्

गौरीदिगम्बर प्रहसन में नान्दी तीन श्लाकों में है। प्रस्तावना में सूत्रधार तथा नटी की, प्रहसन तथा उसके रचयिता के विषय में वार्ता है। भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की भाँति कवि ने अपने को प्रक्षिप्त न करके अपना पूर्ण व स्पष्ट परिचय दिया है।

गौरीदिगम्बर प्रहसन में दिगम्बर भगवान् शङ्कर व गौरी के विवाह का वर्णन है। भगवान शङ्कर दिगम्बर रूप में ही अपने गणों की बारात के साथ गौरी के पिता के यहाँ जाते हैं। उनके इस रूप पर बारात देखने वालों में तरह तरह की प्रतिक्रियायें होती हैं। तथा उनमें असन्तोष व्याप्त होता है। मैनाक तथा शिव के मध्य वार्तालाप विशेष हास्योत्पादक है।

कलात्मकता तथा भावात्मकता दोनों ही दृष्टि से भगवदज्जुकीयम् से इस प्रहसन का कोई मेल नहीं है। इस प्रहसन में अपेक्षाकृत अश्लीलता अधिक है। दिगम्बर शङ्कर के कामोत्तेजित शिश्नादि का यदि कवि ने न भी चित्रण किया होता तो भी प्रहसन के हास्य तत्त्व में कहीं कमी न आती।

प्रहसन में स्थान स्थान पर संवाद बहुत बड़े हैं। प्रहसन में कई पात्र ऐसे हैं यथा–नन्दी, मैनाक, दिगम्बर (शङ्कर), गौरी, माहेश्वर (शङ्कर) तथा भृङ्गरिटी। शेष पात्रों का संवाद प्राकृत भाषा में है। कवि ने प्रथम सिद्धि में शङ्कर के लिए दिगम्बर शब्द तथा द्वितीय सिद्धि में माहेश्वर शब्द का प्रयोग किया है।

प्रहसन एकाङ्की है तथा कथावस्तु दो सिद्धियों में विभक्त है। भरत वाक्य में राजा तथा प्रजा की मंगलकामना की गयी है।

[झ] मदनकेतुचरितं प्रहसनम्[29]

रामपाणिवाद विरचित मदनकेतुचरित प्रहसन आधुनिक संस्कृत प्रहसनों में अपना उत्कृष्ट स्थान रखता है। इसमें नान्दीपाठ के पश्चात् प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। प्रस्तावना में सूत्रधार तथा परिपार्श्वक का वार्तालाप है। प्रहसन में कवि ने अपना परिचय दिया है–

प्रहसनलक्षणलेशैः स्पष्टं चेत् प्रहसनाभिधां लभताम्।
नोचेत् पुनरन्यदिदं विनोदनं पाणिवादस्य[30]।।
मङ्गलग्राम वास्तव्येन रामपाणिवादेन विरचितं
मदनकेतुचरितं नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तते[31]।।

प्रस्तुत प्रहसन में कवि ने कहीं भी गर्वोक्ति नहीं की[32]--

स पुनर्यथानैपुणं क्रियत एव। किन्तु........

X X X

बालोऽप्यात्मकृति..................तारागणः।।

इस प्रहसन में बौद्धभिक्षु विष्णुमित्र, राजा मदनकेतु, चन्द्रलेखा, अनङ्गलेखा तथा शिवदास की प्रेम कथा का प्रसङ्ग है। प्रस्तुत प्रहसन पर भगवदज्जुकीयम् का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। भगवदज्जुकीयम् की भाँति इसमें शिवदास द्वारा योगबल से अनङ्गलेखा के शरीर में प्रवेश किया गया है। अनङ्गलेखा को भी सर्प ने डसा है। सर्पदंश के पश्चात् अनङ्गलेखा की क्षणिक मृत्यु हो जाती है और फिर शिवदास की आत्मा के प्रवेश के पश्चात् मृत अनङ्गसेना उठकर चलने फिरने लगती है। इससे सभी पात्र आश्चर्य चकित हो उठते हैं। भगवदज्जुकीयम् प्रहसन की ही भाँति कथावस्तु की उत्कर्षता पर यहाँ भी हास्य उत्पन्न किया गया है।

भगवदज्जुकीयम् की वसन्तसेना[33] की भाँति मदनकेतुचरित प्रहसन की चन्दनिका[34] भी लौकिक संस्कृत बोलती है। इसी प्रकार अनङ्गलेखा भी प्राकृत भाषा में संभाषण करते करते लौकिक संस्कृत बोलने लगती है[35]।

भगवदज्जुकीयम् की प्रस्तावना में कवि ने अपना परिचय कुछ भी नहीं दिया है परन्तु मदनकेतुचरितम् की प्रस्तावना मे इसके कृतिकार का परिचय है। भगवदज्जुकीयम् की भाँति मदनकेतुचरितम् में भी शृंगार, अद्भुत तथा वीभत्स रसों को गौण रूप से स्थान प्राप्त है। नाट्यशास्त्र के नियमों के निर्वाह हेतु दोनों ही कृतिकारों द्वारा मंच पर वध का दृश्य न प्रस्तुत कर इस प्रकरण को क्षणिक मृत्यु

के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मदनकेतुचरितम् प्रहसन पर तत्कालीन सामन्तवादी शासन[36] का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। इसमें विषयानुकूल दीर्घ समासों के प्रयोग से भाषा तथा वाक्य गम्भीर हो गए हैं तथा इस प्रकार के समासयुक्त वाक्यों का बाहुल्य है। यह प्रहसन भगवदज्जुकीयम् की ही भांति प्रसाद तथा माधुर्य गुणों से युक्त है। डॉ. राम जी उपाध्याय के मतानुसार- 'चरित नायकों का चारित्रिक विकास संस्कृत के विरल रूपकों में ही हो पाया है। मदनकेतुचरितम् इस दृष्टि से एक अनूठी रचना है'।

पुनश्च इस कृति का विशेष महत्व यह बताने में है कि लकीर का फकीर बनकर ही कवि नाटक नहीं लिखते थे अपितु वह कलाकृति का निर्माण करते थे।

मदनकेतु प्रहसन का प्रारम्भ विष्कम्भक[37] से होता है। यह नाट्यशास्त्रीय विधान के विपरीत है। प्रवेशक व विष्कम्भक नाटक, प्रकरण तथा नाटिका में ही होना चाहिए[38]।

रामपाणिवाद के ही अनुसार मदनकेतुचरितम् केवल अभिनय की दृष्टि से प्रहसन है-

प्रहसनलक्षणलेशैः स्पृष्टं चेत् प्रहसनाभिधां लभताम्।
नो चेत् पुनरन्यदिदं विनोदनं पाणिवादस्य।।

मदनकेतुचरितम्

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अध्याय में वर्णित प्रहसनों की तुलनात्मक समीक्षा में तथा पुस्तक के ही अन्य अध्यायों में भी जहाँ जहाँ भगवदज्जुकीयम् प्रहसन के भावपक्ष व कलापक्ष का चिन्तन है कहीं भी इस प्रहसन के समकक्ष कोई भी प्रहसन अपना स्थान अर्जित नहीं कर पाता। यद्यपि कि मदनकेतुचरितम् इस प्रहसन के पर्याप्त समीप है तथापि वैसा भावगांभीर्य व कला कौशल धारण करने का गौरव उसे समीक्षकों का समीक्षण नहीं प्रदान कर सका।

1 संस्कृत में एकांकी रूपक-124, डॉ. वीर बाला शर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकैडमी भूपाल। 2. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ-6 3. वही-पृष्ठ 2/3. 4. प्रतिज्ञायौगन्धरायणं प्रतिमानाटकञ्च। 5. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ49, सं. पी. अनुजन्अचन 6 वही-पृष्ठ-47. 7. वही-पृष्ठ-92. 8. प्रहसनपरम्परा और भगवदज्जुकीयम्, भाग प्रथम। 9. अर्थशास्त्र औपनिषदकं चतुर्दश अधिकरणम्-श्री हर्ष। 10. वयस्कः सहचर स एव विदूषकः-नाटकलक्षणरत्नकोष; सागरनन्दी। 11. Vidushak-Page 93/94; G K Bhat. 12. लिङ्गीद्विजो राजजीवी शिष्यश्चेति यथाक्रम-नाट्यशास्त्र (गायकवाड़ ओरियन्ट्ल सीरीज़)-24/16-20. 13. मध्यकालीन संस्कृत नाटक-डॉ. रामजी उपाध्याय। 14. संस्कृत में एकांकी रूपक-डॉ. वीर बाला शर्मा. 15. दशरूपक-3/7-8 16. मत्तविलास प्रहसनम् पृष्ठ 8 व 9. 17. वही-पृष्ठ 31. 18. वही.

19. गोविन्ददेवः प्रथितः पृथिव्यां श्रीमान् महामाण्डलिकाधिराजः।
कविप्रियो नाटकदर्शनार्थमादेशयन् मां रणरङ्गमल्लः।।4।।
निस्त्रिंशक्षतकुम्भिकुम्भविगलन्मुक्ताकलापाङ्कुराः
कङ्कालामलकर्पराः पतदसृक्पङ्कप्रलिप्तोदरा.।
मज्जद्भूधरकोटिमन्थनकलादत्तारिवीरश्रियो
येनैता विहिताः पयोधि विषमा भीमा रणक्षोणयः।।5।।
येनगभीरेसमरे रिपुणमुन्मथ्य मार्गणैरगणैः।
मार्गणनिबह विलब्धाश्चित्त चमत्कारिणः करिणः।।6।।
चित्रं चरित्रं स्खलितव्रतानां शीलाकरः शङ्खधरस्तनोति।
विद्वज्जनानां विनयानुवर्ती धात्री पवित्रीकरणः कवीन्द्रः।।7।।
वक्रा विश्वविरोधिनः कतिपये द्वित्राः परित्राशयाः
क्रूरोक्तिप्रकरोद्धुरास्त्रिचतुरा दोषोन्मुखाः पञ्चषा।
दृष्टः क्वापि लसद्द्विजिह्वदमन व्यापारलीलानिधे
गोविन्दादपरः परः परगुणग्राही न कश्चित्पुनः।।8।। लटकमेलकम्-प्रथमोऽङ्कः।

20. मध्यकालीन संस्कृत नाटक-डॉ. रामजी उपाध्याय। 21. वही 22. लटकमेलकम्-भूमिका-पृष्ठ-1, विद्याभवन संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी। 23. वही-पृष्ठ-52 24. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ-97; पी. अनुजन् अचन। 25. महाशासनश्रेणिशिखरभ्रामत्पल्ली जन्मभूमिना कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वरेण निजकुतूहल विरचितं धूर्तसमागमनाम प्रहसनमभिनेतुमादिष्टोऽस्मि। तस्य चादिष्टमवश्यमिष्टं मालतीमालेव मया शिरोधरणीयम्।।धूर्तसमागमः -पृष्ठ-32, स. डॉ. जयकान्त मिश्र। 26. संस्कृत में एकाङ्की रूपक-पृष्ठ-168/169; डॉ. वीर बालाशर्मा। 27. संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृ. 588; आचार्य बलदेव उपाध्याय।

28. कौण्डिन्यः- निजनिजस्थानेषु तिष्ठन्तु निधानानि। वलाभ्यतु दारिद्यदूनो लोक उपरमति ज्ञानराशिः।

कोकिलः- रे रे जानाति तव उपाध्यायो निधानानि ?

कौण्डिन्यः-को नात्र एतेन कृतार्थीकृतः?-हास्यचूड़ामणि प्रहसनम्-पृ.- 33, सं. डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, देवभाषा प्रकाशनम् दारागंज, प्रयागः।

29. Edited by- Dr. P.K. Narayana Pillai, Trivendram sanskrit series, Trivendram, Kerala. 30. मदनकेतुचरितं प्रहसनम् पृष्ठ-56. 31. वही-पृष्ठ-2. 32. वही-वहीं 33. भगवदज्जुकीयम्-पृष्ठ 59 व 60; श्लोक 18 व 19; सं. पी. अनुजन् अचन। 34. मदनकेतुचरितम्-पृष्ठ-25/43. 35. वही-पृष्ठ-45.36. वही-पृष्ठ-8.

37. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विषकम्भो मध्यपात्र प्रयोजकः।। दशरूपकम्- 1/59

38. आदौ विषकम्भकं कुर्यादिकं वा कार्ययुक्तितः। वही-3/28.

परिशिष्ट 1

(क) समयक्रमानुसार प्रहसनों की सूची

क्र०	प्रहसन का नाम	कृतिकार	रचना काल
1.	दामक प्रहसनम्	भास (विवादास्पद)	
2.	भगवदज्जुकीयम्	बोधायन	ख्रीष्टा.6 उत्त
3.	मत्तविलास प्रहसनम्	महेन्द्रविक्रम वर्मा	ख्रीष्टा.7 प्र च.
4.	लटकमेलकम्	शङ्खधर	ख्रीष्टा.12 पूर्वा.
5.	हास्यचूडामणि:	वत्सराज	ख्रीष्टा.12 उत्त.
6.	धूर्तसमागमः	ज्योतिरीश्वर	ई.सन् 1325
7.	मुण्डितप्रहसनम्	ज्योतिरीश्वर (विवादास्पद)	ई.सन् 1325
8.	गौरीदिगम्बरम्	शङ्कर मिश्र	ई.सन् 1500
9.	कौतुकरत्नाकरः	कवितार्किक	ख्रीष्टा. 16अं च.
10.	हास्यसागरः	रामानन्द	ई.सन् 1656
11	अद्भुतरंगः	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–1675
12	प्रासङ्गिक	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–1675
13	पलाण्डुमण्डनम्	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–1675
14.	विबुधमोहनम्	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–167
15.	सहृदयानन्दः	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–167
16	धृतकुल्यावलिः	हरिजीवन मिश्र	ई.सन् 1667–1675
17.	धूर्तनर्तकः	सामराजदीक्षित	ई.सन् 1681
18	भानुप्रबन्धः	वेंकटेश्वर	ई.सन् 1684–1711
19.	वेंकटेशः	वेंकटेश्वर	ई.सन् 1684–1711
20.	लम्बोदरः	वेंकटेश्वर	ई.सन् 1684–1711
21	हास्यार्णव प्रहसनम्	जगदीश्वर भट्टाचार्य	ई.सन् 1701
22.	मदनकेतुचरितम्	रामपाणिवाद	ई.सन् 1707
23.	उन्मत्तकविकलशः	वेंकटेश्वर (अन्य)	ई.सन् 172

24	धर्मविजय (प्रहसनप्रधानपञ्चाङ्कः)	भूदेव शुक्ल	ई सन् 1736
25.	कुहनाभैक्षवम्	तिरूमलकवि	ई.सन् 1750
26.	कुक्षिम्भरभैक्षवम्	प्रधान वेङ्कप्प	ई.सन् 1763
27.	चण्डानुरञ्जन	घनश्याम	खीष्टा.18 प्र.च.
28.	डमरूक	घनश्याम	खीष्टा.18 प्र.च.
29.	हास्यकौतूहल	विट्ठलकृष्ण विद्यावागीश	खीष्टा.18 प्र.च.
30.	कौतुकसर्वस्व	गोपीनाथ चक्रवर्ती	खीष्टा.18
31.	सान्द्रकुतूहल (चतुरङ्कः)	कृष्णदत्त उपनाम गिरिवरधरदास	खीष्टा.18 उत्त.
32.	कर्णकुतूहल	कृष्णदत्त उपनाम गिरिवरधरदास	खीष्टा.18 उत्त.
33.	भट्टसंकट (पंचाङ्कः)	श्री श्रीजीवन्यायतीर्थ	ई.सन् 1926
34.	विमुक्ति	वेङ्कटराम राघवन्	ई.सन् 1931
35.	लीलाविलास (सप्ताङ्कः)	को.ल.व्यासराज शास्त्री	ई.सन् 1935
36.	कौण्डिन्य	वाई.महालिंग शास्त्री	खीष्टा.-20 पूर्वा.
37.	उभयरूपकम्	वाई.महालिंग शास्त्री	खीष्टा.-20 पूर्वा.
38.	श्रृंगारनारदीयम्	वाई.महालिंग शास्त्री	खीष्टा.-20 पूर्वा.
39.	अलब्धकर्मीयम्	के.आर.नायर	ई. सन्. 1942
40.	विधिविपर्यास	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968
41.	विवाहविडम्बन	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968
42.	रामनामदातव्य-चिकित्सालय (प्रहसनप्रधान)	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968
43.	चौरचातुरीय	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968
44.	चण्डताण्डव	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968
45.	क्षुतक्षेमीय	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944-1968

46	शतवार्षिक	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई सन् 1944 1968
47.	दरिद्रदुर्दैव	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
48	वनभोजनम्	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
49.	स्वातन्त्र्यसन्धिक्षणम्	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
50.	पुरूषरमणीय	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
51	रागविराग	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
52	चिपिटकचर्वण	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
53.	तैलमर्दन	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
54	नष्टहास्यम्	श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ	ई.सन्. 1944–1968
55	कर्मफल	रामनाथ मिश्र	ई.सन्.1955
56	कपोतालय	लीलाराव	ई.सन्.1955–1961
57	लालावैद्य (त्रयङ्कः, प्रहसनात्मक)	स्कन्दशङ्कर खोत	ई.सन्.1955
58	हा हन्त शारदे	स्कन्दशङ्कर खोत	ई.सन्.1956
59	अनङ्गदा	जग्गू श्री वकुलभूषण (जग्गू अलवारैय्यङ्गार)	ई.सन्.1958
60	अनुकूलगलहस्तक	विष्णुपद भट्टाचार्य	ई.सन्.1959
61.	मणिकाञ्चनसमन्वय	विष्णुपाद भट्टाचार्य	ई.सन्.1959
62.	नवोढ़ावधूवरश्च	पट्टाभिराम शास्त्री	ई.सन्.1963
63.	तीर्थयात्रा	रामकुबेर मालवीय	ई.सन्.1966
64	धरित्रीपति निर्वाचनम् (हास्यव्यंग्यात्मक)	सिद्धेश्वर चट्टोपाध्यायः "बुड़ोदा"	ई.सन्.1969–1974
65	अधिकम् (हास्यव्यंग्यात्मक)	सिद्धेश्वर चट्टोपाध्यायः "बुड़ोदा"	ई.सन्.1969–1974
66	नानाविताड़न (हास्यव्यंग्यात्मक)	सिद्धेश्वर चट्टोपाध्यायः "बुड़ोदा"	ई.सन्.1969–1974
67	स्वर्गीय हसन	सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय "बुड़ोदा"	ई.सन्.1969–1974

68 क श्रेयान	ई सन 1976
69. नाटवाट	यदुनन्दन
70. दोला पंचीलक	रामनाथ शास्त्री
71. पण्डितताण्डव	बटुकनाथशर्मा
72. पण्डितचरितम्	मधुसूदन
73. पाखण्ड विडम्बन	महेश्वर
74. योगानन्द	अरूणगिरिनाथ
75. मणिमंजूषा	कांचनमाला
76. विनोदरङ्ग	सुन्दरदेव वैद्य
77. सुभगानन्द	वासुदेव उपनाम गोविन्द श्रीवत्साङ्क
78. स्वैराचार	नारायण शास्त्री

(ख) ऐसे प्रहसनों की सूची जिनके प्रणेता अज्ञात हैं-

1. आनन्दकोष
2. कन्दर्पकेलि
3. धूर्तचरितम्
4. कौतुकरत्नाकर
5. कलिकेलि
6. उन्मत्त
7. सौरन्ध्रिका या सौभद्रिका
8. देवदुर्गति
9. पयोधिमन्थन
10. धूर्तविडम्बन
11. प्रतापरूद्रीय विडम्बन
12. सागरकौमुदी
13. कालेयकुतूहल
14. काशीदास
15. कालिदास
16. वृहत्साभद्रक
17. शशिविलास
18. सोमवल्ली योगानन्द
19. नटकमेलकम्
20. हृदयविनोद

परिशिष्ट–2

(क) प्रहसनगत सूक्तियाँ

1. अमानकामस्सहितव्यथर्षणः
कृशाज्जनाद्भैक्षकृतात्मधारणः ।
चरामि दोषव्यसनोत्तरं जगद्
ह्रदं बहुग्राहमिव प्रमादवान् ॥

2. यदा तु सङ्कल्पितमिष्टमिष्टतः
करोति कर्मावहितेन्द्रियः पुमान् ।
तदास्य तत् कर्मफलं सदा सुरैः
सुरक्षितो न्यास इवानुपाल्यते ॥

3. सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां
भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम् ।
सुहृत्स्वमित्रेषु च भावतुल्यतां
वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसङ्गताम् ॥

4. अनागतं प्रार्थयतामतिक्रान्तं च शोचताम् ।
वर्तमानैरतुष्टानां निर्वाणं नोपपद्यते ॥

5. अतिमानोन्मत्तना–
महिते हितमिति कृतप्रतिज्ञानाम् ।
नैवास्ति परं तेषां
स्वच्छन्दकृतप्रमाणानाम् ॥

6. महात्मभिस्सेवितपूजितं द्विजैः
सुरासुराणामपि बुद्धिसंमतम् ।
अवार्यमक्षोभमचिन्त्यमव्ययं
महन्महायोगफलं निषेव्यते ॥

7. सर्वजगत्साक्षिप देहबन्धे
यथेन्द्रियाण्यात्मनि योजयित्वा ।
ज्ञानेन सत्त्वं समुपाश्रय त्वं
देहात्मनात्मानमवेक्ष्य कृत्स्नम् ॥

8. भूतानि यो हरति कर्महतानि लोके
यः प्राणिनां सुकृतदुष्कृतकर्मसाक्षी ।
उक्तोस्मि तेन शमनेन यमेन देहे
प्राणान्प्रजावधिविधौ विनियोजयेति ॥

9. स्वकर्म भोक्तुं जायन्ते प्रायेणैव हि जन्तवः ।
क्षीणे कर्मणि चान्यत्र पुनर्गच्छन्ति देहिनः ॥

(ख) प्रहसन में प्रयुक्त सुभाषित

1. यः स्वप्ने गगनमुपैति सोऽन्तरात्मा,
सोऽप्यात्मा विधिविहितं प्रयाति यश्च ।
देहोऽयं नर इति संज्ञितोऽन्यथा वा
कर्मात्मा श्रमसुखभाजनं नराणाम् ॥

2. प्रमाणं कुरु यल्लोके प्रमाणीक्रियते बुधैः ।
नाप्रमाणं प्रमाणस्थाः करिष्यन्तीति निश्चयः ॥

3. ज्ञानमूलं, तपस्सारं, सत्त्वस्थं द्वन्द्वनाशनम् ।
मुक्तं द्वेषाच्च रागाच्च योग इत्यभिधीयते ॥

4. तमस्त्यक्त्वा रजो जित्वा सत्त्वस्थः सुसमाहितः ।
ध्यातुं शीघ्रं भवान् ध्यानमेतज्ज्ञानप्रयोजनम् ॥

परिशिष्ट–3

(क) प्रहसनरत्नं प्रति प्रत्नं मतम्

1. बोधायन कवि रचिते
विख्याते भगवदज्जुकाभिहिते ।
अभिनेयेऽतिगम्भीरे
विशदानधुना करोमि गूढार्थान् ॥

2. अस्मिन् नाट्यरसे निसर्गगहने योगीन्द्रशिष्यावुभा–
वात्मानौ परजीवशब्दकथितावन्या तथैवाज्जुका ।
मूलाधारसमुद्गता सशुषिरा नाड़ी सुषुम्नाऽपरे
चेट्यौ चोभयपार्श्वगे ससुषिरे नाड्याविडापिङ्गले ॥

3. अविद्या गणिकामाता महान् रामिलको मतः ।
वैद्यो हि कल्पसङ्कल्पौ कालस्तु यमपूरुषः ॥

4. एवं प्रेक्षामयं योगं युञ्जन् नर्तक तापसः ।
प्रत्यञ्चमच्युतं सद्यः साक्षात्कृत्य सुखी भवेत् ॥

5. इति प्रहसनाभिख्ये पूर्णा नाट्यनिबन्धने
हास्यगूहिततत्त्वार्थे टीकादिङ्मात्रदर्शिनी ॥

6. यश्चासौ भवभूतिसूक्तिजलधेरर्थौघयादोगण
प्रक्षोभोत्थितभीतिभञ्जनकरीं व्याख्यातरीं निर्ममे ।
तेनेयं विषमेतिवृत्तगहने बौधायनीये पुन–
र्नाट्ये गर्भितशास्त्रजृम्भितवचोगम्भीरगुम्फेकृता ॥

7. बुधजनमानसेन कियतीमपि मे विवृत्तिः
मुदमतिरिक्तमोहर भसोपचिता कुरुते ।
तदपि कृशाशयावशक्कुशीलवमात्रहिता

यदि तु भविष्यतीयमियता सफलैव कृतिः ।।
8. बोधायनकविरचितं बोधायतनं विमुक्तशास्त्राणाम् ।
प्रहसनरत्नं प्रत्नं भवतु मुदे भगवदज्जुकीयं वः ।।
अस्य प्रहसनस्य अप्रकाशित टीकातः

(ख) प्रशस्ति

यैर्बोधायनसूक्तिपुष्पकलिकाः कर्णावतंसीकृता,
येषां बिल्हणसूक्तिमौक्तिकसराः कण्ठानलङ्कुर्वते ।
माधुर्यैकभुवां मुरारिवचसामस्वादि यैः स्वादिमा,
सन्तुष्यन्ति त एव नूतनसुधावेणीषु वाणीषु नः ।।
सुकुमारकविविरचितम् रघुवीरचरितात्

परिशिष्ट–4

(क) THE TIMES OF INDIA, FRIDAY OCTOBER-29, 1982 (LUCKNOW PUBLICATION)

KUCHIPUDI 'OLD AND NEW'

The charming dance style of Andhra, which derives its name from the village of its origin, has endeared itself to audiences nearly everywhere, closer to the heart than to the head, it makes less demand on the spectator.

Traditional numbers in this style have lately yielded place to innovative ventures-Proof. of vitality, two such essays were witnessed on successive days at the FICCI auditorium.

Raja Reddy's recital on Monday, included a dramatised episode from an ancient work BHAGAVAT-AJJUKIYAM, which underlines the enevitability of fate and the absurdity of the motion of transmigration, but the

concept is developed round the tale of vasantsena, the courtesan of rare beauty whose death moves even a bhikhsu to envoke his yogic powers to under the effect of Fate, with comic results.

Whoever rendered into Telgu, the sanskrit tale and set it to music in Kuchipudi style had done a neat job.

The Transformation of the saint into a courtesan and of the courtesan into a saint was rich in dramatic Potential, though the presentation did-

DANCE

-Not exploit it adequately, with sharp focus on model points this could become a very attractive and meaningful number.

Tuesday performance of Kuchipudi was by shoba Naidu, a disciple of Vempattichinnasatyam. Tallented and pretty, shobha betrayed on Tuesday once again her penchant for popular appeal. How else could one account for numbers 'Manasa Sancharave' in sama which was tagged on to Narayaneeyam ? what passes for art in film's can't stand the text on the classical plateform a lesson which her training should have underlined.

The light touch characterised her approach to other numbers as well, even in the Asthapadi what one witnessed was stage-acting rather than Abhinaya, and Nritya, and when one turned an ear to the music and its quality, one wondered if Shobha was not taking her audience for granted whither professionalism ?

K.S. Srinivasan

(ख) श्लोकानुक्रमणिका

अनुशीलित ग्रन्थावली

1- श्रीमदभगवतगीतारहस्यम्, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक अनु0 माधवराव जी सप्रे दी0ज0 तिलक, शै0श्री0 तिलक 568, नारायण पेठ लोकमान्य तिलक मंदिर पूना, 1980

2- महाभारतम्, सं0 वसन्त श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्यायमण्डल, भारत-मुद्रणालय किल्ला पारडी जिला-बलसाड़, गुजरात, 1969-1977

3- ऋग्वेद संहिता, तथैव, चतुर्थ संस्करणम्

4- उत्तररामचरितम्, भवभूति, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ, 1978

5- व्याकरण महाभाष्य, पतंजलि सं0 कील बार्न बम्बई, 1880-1883

6- बाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर

7- काव्यमीमांसा, राजशेखर

8- अग्नि पुराणम्

9- प्राकृत प्रकाशः, वररुचि, व्या0 डा0 श्रीकान्त पाण्डेय साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1981

10- ध्वन्यालोकः, आनन्दवर्द्धनाचार्यः व्या0-आचार्य विश्वेश्वरः, ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1962

11- काव्य प्रकाशः, मम्मटाचार्यः व्या0-आचार्य विश्वेश्वरः ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1960

12- दशरूपकम्, धनंजय, व्या0 डा0 रमाशंकर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1973

13- साहित्यदर्पणः, विश्वनाथ कविराजः, व्या0 शालग्राम शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, 1961

14- सांख्यतत्त्वकौमुदी, रमाशंकर भट्टाचार्यः मोतीलाल बनारसीदास (दिल्ली–पटना वाराणसी) वाराणसी, 1976

15- नाट्यशास्त्रम्, भरताचार्य, 1926। गायकवाड़ संस्कृत सिरीज बड़ौदा, 1954। काव्यमाला सिरीज बम्बई, 1894। काशी संस्कृत सिरीज वाराणसी, 1929 सं0

16- नाट्यशास्त्रम् (अभिनवभारती सहितम्) मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, 1971

17- कामसूत्र, वात्सायन, काशी संस्कृत सिरीज वाराणसी, 1929

18- नागानन्दम्, श्री हर्षवर्धन, सं0 हरिवंशलाल लुथड़ा एस चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1958

19- कात्यायन श्रौतसूत्र, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी 1933

20- औचित्य विचार चर्चा, क्षेमेन्द्र, व्या0 वृजमोहन झा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1980

21- मदनकेतुचरितम्, रामपाणिवाद, सं0डा0 पी0 के0 नारायण-पिल्लई, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम्।

22- दशरुपक, धनन्जय, आलोकवृत्ति, हिन्दी टीका, व्या0–प्रो0 गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1960

23- भारतीय दर्शन, डॉ0 उमेश मिश्र, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महा0 गा0 मार्ग, लखनऊ, 1975

24- मध्यकालीन संस्कृत नाटक, डॉ0 रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश, 1974

25- आधुनिक संस्कृत नाटक, तथैव, 1977

26- संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बल्देव उपाध्याय, शारदा निकेतन, रवीन्द्र पुरी, वाराणसी, 1985

संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (उ0प्र0) 1975

सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रंथ, संपा0–डॉ0 नागेन्द्र, सेठ गोविन्द दास हीरक जयन्ती समारोह, नई दिल्ली, 1956

संस्कृत में एकांकी रूपक, डॉ0 वीरबाला शर्मा, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ एकाडमी, भोपाल, 1972

विश्वसभ्यता का इतिहास उदय नारायणराय, नव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ0प्र0, 1961

वाचस्पत्यम्कोष, भाग 1–6, तारानाथ भट्टाचार्या, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी उ0प्र0,1962–1967

भगवदज्जुकम् प्रहसनम्, बोधायन, सं0–प्रभात शास्त्री, देव–भाषा प्रकाशनम्, दारागंज, प्रयाग, (उ0प्र0) 1979

मत्तविलास प्रहसनम्, महेन्द्रविक्रम वर्मा, व्यां–कपिलदेव गिरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1966

लटकमेलकम्, शङ्खधर, व्या. पं. कपिलदेव गिरि, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1962

हास्यार्णवप्रहसनम्, जगदीश्वर भट्टाचार्य, व्या0–ईश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1963

गौरीदिगम्बर प्रहसनम्, शंकर मिश्र, व्यां – तरिणी झा, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी, 1969

श्रृंगारनारदीयम् प्रहसनम्, श्री वाई महालिङ्ग शास्त्री, साहित्य चन्द्रशाला, तन्जौर, मद्रास, 1956

हास्यचूड़ामणि प्रहसनम् अमात्य वत्सराज, सं0–डा0 जयशंकर त्रिपाठी, देवभाषा प्रकाशनम्, दारागंज, प्रयाग, 1970

39- धूर्तसमागम्, ज्योतिरीश्वर, सं0 डॉ0 जयकान्त मिश्रः, तीरभुक्ति, 1-एलनगंज, प्रयाग, 1967

40- महाकाल संहिता, सं0-डॉ0 किशोरनाथ झा, गंगानाथ झ केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1976

41- हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, वी0 वरदाचार्य, अनु0 डा0 कपिलदेव द्विवेदी, 1956

42- सिक्स सिस्टम आफ इंडियन फिलासफी, मैक्स मूलर

43- भारतीय दर्शन का इतिहास, देवराज

44- महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, 2044

45- उभयरूपकम् प्रहसनम्, श्री वाई महालिङ्ग शास्त्री, साहित्य चन्द्रशाला, तन्जौर, मद्रास, 1962

46- शब्दस्तोममहानिधः कोष, तारानाथ भट्टाचार्य, 1967

47- नाट्यदर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र

48- कर्णभारम्, भास, चौखम्भा ओरियन्अलिया, वाराणसी, 1975

49- नाटकलक्षणरत्नकोष, सागरनन्दी

50- भावप्रकाशनम् शारदातनय, सं0 बी0 जे0 सण्डेसारा, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, नं0 45, ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1968

51- रसगंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्या- भवन, चौक, बनारस, 1955

52- इण्डियन एन्टीक्वैरी, डा0 कील हार्न, 1976 जुलाई

53- कथासरित्सागर, सोमदेव भट्टेन विरचिता, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली-पटना-वाराणसी, 1977

54- दरिद्रदुर्दैव प्रहसनम्, श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता, 1968

55- प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डेय
56- भारत का इतिहास, के0 ए0 अहतोहोबा संपा0 नरेश वेदी, अनु0 नरेश वेदी व ददन उपाध्याय, प्रगति प्रकाशन मास्को (यू0एस0एस0आर0), 1984

57- HISTORY OF SANSKRIT LITERATURE, DR. S N DASGUPTA AND S.K. DEY. 1947

58- APTE'S SANSKRIT ENGLISH DICTIONARY, PRIN. VAMAN SHIVRAM APTE, BHANDARKER ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE POONE. 1980

ED. P.K. GODE AND C.K. KARVE 1959

59- APTE'S, SANSKRIT HINDI DICTIONARY, MOTILAL BANARSI DAS, VARANASI

60- THE VIDUSAKA, G.K. BHAT, THE NEW ORDER BOOK CO , BLLIS BRIDGE, AHMEDABAD-6 (GUJRAT), 1959

61- CATALOGUS CATALOGORUMM PART-I, THEODOR AUFRECHT, 1962

62- STUDIES IN BUDHISTIC CULTURE OF INDIA, LAXMAN JOSHI, MOTILAL BANARSI DAS, VARANASI, 1987

63- CONTRIBUTION OF KERALA TO SANSKRIT LITERATURE, DR. K KUNJUNNI RAJA, UNIVERSITY PUBLICATION, MADRAS. 1980

64- RETORIC, ARISTOTLE

65- ON THE SUBLIME, LONGNIS

66- ART POETICA, HORESH

67- ESSAY OF CRITICISM, POPE

68- NATAK PARIBHASA OF SING BHUPAL, EDT. BY DR K DATTA, SANSKRIT SAHITYA PARISHAT, CALCUTTA, 1967

69- HISTORY OF CALSSICAL SANSKRIT LITERATUR E. M KRISHNAM CHARIER, MOTILAL BANARSIDAS, VARANASI, 1937

70- SIR MONIER WILLIAM DICTIONARY OF SANSKRIT. ETD. BY M. MONIER WILLIAM, 1899

71- HISTORY OF INDIAN LITERATURE (CLASSICAL LITERATURE) M. WINTERNITZ, MOTILAL BANA-RASIDAS, NEW DELHI, 1977

72- SABDA RATNA SAMANVAYA KOSA, ETD. BITH-ALRAM LALLORAM. KING SAHAJI OF TANJORE, BARODA ORIENTAL INSTITUTE, BARODA 1932.

73- SANSKRIT DRAMA, A.B. KEITH, OXFORD UNIVER-SITY, 1924

74- BHAGAVADAJJUKIYAM, ETD. BY P. ANUJAN ACHAN, OFFICE OF PALIYAM M.S.S. LIBRARY JAYANTAMANGLAM, 1925

75- LITERARY HISTORY OF INDIA R.W. FRAZER T. FISHER. UNURSI, LONDON, 1915

76- अखण्डज्योति, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, 1981 दिसम्बर

77- ज्योतिषमार्तण्ड, सं0 देवधर पाण्डेय, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान, जनवरी 1985

78- THE TIMES OF INDIA (NEWS PAPER), TIMES OF INDIA PUBLICATION LUCKNOW, FRIDAY-29TH OCTOBER 1982

79- JOURNAL OF THE FOURTH ALL INDIA ORIENTAL CONFRENCE AT ALLAHABAD. BHANDARKER RESEARCH INSTITUTE POONE, 1926

80- JOURNAL OF THE ORIENTAL INSTITUTE, BARODA, VOL-35 NOS.1-2, M.S. UNIVERSITY BARODA.